एक रात

[एक उच्च कोटि का मौलिक समाजिक उपन्यास]

लेखक
पं० पुरुषोत्तमदास गौड़ "कोमल"

प्रकाशक
गौड़ पुस्तक-भण्डार
कटरा, प्रयाग ।

मूल्य ॥=) दस आना

प्रकाशक
पुरुषोत्तमदास, हरचरणलाल
सञ्चालक
गौड़ पुस्तक-भण्डार
कटरा, प्रयाग।

पहिली बार

पहिली जनवरी १९३५ ई०

मुद्रक—
सिटी प्रेस, प्रयाग।

उपहार

श्री [illegible]

समर्पण

क्षत्रीय-समाज के उत्साही नवयुवक और
विद्यार्थी रूप में देश की भावी आशा
बलिया निवासी श्रीयुत ठाकुर
रामसिंह जी के कर कमलों
में अपनी यह कृति
सस्नेह समर्पित

उन्हीं का स्नेही—
"कोमल"

ता० १ जनवरी १९३५
कटरा प्रयाग।

भूमिका

पूरे एक मास हुए। मुझे पढ़ने के लिये एक पुस्तक मिली। उस पुस्तक का नाम "अछूत के पत्र" था। वह पुस्तक मुझे इतनी सुन्दर और कलापूर्ण ज्ञात हुई कि उसके लेखक ने मेरे हृदय में घर सा कर लिया। यों मैं बहुत पहिले से भी समीप-वर्त्ती होने के कारण उस पुस्तक के लेखक से परिचित था, किन्तु इस पुस्तक के पढ़ लेने के पश्चात् मैं उस लेखक के सम्बन्ध में वह चीज़ जान गया, जो एक लेखक को किसी लेखक के सम्बन्ध में जानना चाहिये। उसकी मनोहर शैली, सामाजिक संसार में उथल-पुथल मचाने वाला उसका कथानक, कथानक स्थिति को वास्तविक रूप में प्रकट करने की उसकी चतुराई, मैं यह सब एक साथ ही एक पुस्तक में एक स्थान पर देख कर अवाक सा रह गया। यद्यपि मैं कभी इस युवक लेखक का विरोधी था, पर मेरे मुख से बरबस यह निकल ही पड़ा कि इस युवक लेखक के हृदय में सचमुच एक शक्ति है, एक साहस है। वह शक्ति, वह साहस है, जो किसी दिन निरन्तर प्रयास करने के पश्चात् उसे एक ऐसे स्थान पर ले जा सकती है, जहाँ पहुँच

कर वह सारी दुनिया को अपनी चीजें देखने के लिये विवश कर सकता है।

इस युवक लेखक का नाम है, श्री पुरुषोत्तमदास गौड़ 'कोमल'। उनका हमारा उतने ही दिनों का परिचय है, जितने दिनों से मैं प्रयाग में रह रहा हूँ। केवल ५-६ वर्षों से। मैं अपने इतने दिनों के इस परिचय से और चाहे कुछ अधिक न जानने पाया हूँ। पर यह अवश्य जान गया हूँ कि कोमल जी के हृदय में एक साहित्यिक लालसा है, एक साहित्यिक उत्सुकता है। वे साहित्य के रंग मञ्च पर आना चाहते हैं, और आना चाहते हैं, उस रूप में जिसे देख कर सारी दुनिया चमत्कृत होजाये, आश्चर्य में पड़ जाये। कहना न होगा कि उनकी यह साहित्यिक लालसा, उनकी यह साहित्यिक उत्सुकता, उन्हें दिनों-दिन उन्नति के पथ की ओर लिए जा रही है। इसका ज्वलंत प्रमाण तो उनकी रचनाओं का क्रम-विकाश है। जिस ने कोमल जी के साहित्यिक जीवन की प्रारंभिक किरण परी रानी के रूप में देखने के बाद फिर उनका अश्रुकण और "अछूत के पत्र" के रूप में दर्शन किया होगा, वह सचमुच चमक उठा होगा। आश्चर्य में पड़ गया होगा। औरों की बात तो मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता, पर मैं तो कोमल जी की रचनाओं के क्रम-विकाश को देख कर सचमुच एक आश्चर्य

में पड़ गया। आज वही सम्मान से भरा हुआ आश्चर्य ही तो मुझे यहाँ इन लाइनों को लिखने के लिये विवश कर रहा है।

यहाँ मुझे महात्मा टालस्टाय की एक बात याद हो आई। एक बार टालस्टाय के एक मित्र ने उनसे पूँछा, क्या तुम मुझे उन्नति का रास्ता बता सकते हो? टालस्य थोड़ी देर तक अपने उस मित्र को बड़े ध्यान से देखता रहा। फिर उसने मुसुकुरा कर उत्तर दिया, आगे बढ़े चलो। सचमुच उन्नति करने का मार्ग 'आगे बढ़े चलो' है। जो आदमी अपने उद्देश्य के संसार में इस महा मन्त्र का ध्यान से जाप करता रहता है, इसमें संदेह नहीं कि वह एक दिन उन्नति के सुनहले कँगूरे को अपने अधरों से चूम लेता है। कोमल जी में आगे बढ़ने की भावना है ही, लेकिन फिर भी मैं उनसे कहूँगा कि वे अपनी साहित्यिक लालसा के साथ आगे बढ़े चलें, जीवन की सम्पूर्ण शक्तियों को साहित्य संसार में केन्द्रित कर अपनी रचनाओं के विकाश का साधन खोजा करें!! शयाद इससे उनकी वह आशा पूरी होजाये, वे उस स्थान पर पहुँच जायें, जिसकी आज आपने हृदय में बड़ी लालसा के साथ कल्पना कर रहे हैं।

कोमल जी की अब तक ४-५ कृतियाँ साहित्य-संसार के

के सामने आ चुकी हैं। उनमें 'परी रानी' और 'स्वर्ग की सीढ़ी' बाल साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखती हैं। 'अश्रुकण' और 'अछूत के पत्र' दोनों पत्रों के रूप में सामाजिक उपन्यास हैं। दोनों में एक विशेष शैली और एक विशेष वर्णन-प्रणाली का आविर्भाव हुआ है। उनकी पाँचवीं कृति जो इस समय आपके हाथ में है 'एक रात' है। 'एक रात' क्या है, इसमें युवक लेखक के प्रतिभा का कितना और कैसा सुन्दर विकाश हुआ है, इसका फैसला आप स्वयं इसे पढ़कर कर लें। किन्तु तो भी मुझे यह कहना पड़ेगा कि लेखक की यह छोटी, किन्तु महत्त्व पूर्ण कृति साहित्य से संसार में अपना एक विशेष स्थान स्थापित करेगी। गुरुडम-पुजारी साहित्य संसार भले ही इसका सम्मान न करे, पर भावुक दिल खोल कर इसका समर्थन करेंगे, इसे अपने हृदय की दुनिया में जगह देंगे। यदि भावुक हृदयों के इस सम्मान को पाकर कोमल जी और अधिक वेग से उन्नति के पथ की ओर चलने का प्रयत्न करें तो आश्चर्य क्या ?

'एक रात' एक छोटा सा सामाजिक उपन्यास है। ऐसे सामाजिक उपन्यासों की हिन्दी को अभी बहुत बड़ी आवश्यकता है। कोमल जी ने जिस कथानक को अपने इस उपन्यास का आश्रय बनाया है, वह मर्मान्तक यहाँ तक है, दिल में एक आग फूँक

देने वाला है। इस उपन्यास को पढ़ते समय अनायास ही वर्तमान समाज की एक सजीव तस्वीर आँखों के समाने नाच उठती है। ठीक वही तस्वीर जिसकी लेखक ने अपने इस छोटे से उपन्यास में प्रसाधना की है। कोमल जी के इस उपन्यास की यह एक विशेष सफलता है। इस सफलता का बड़े बड़े कला कार तक दिल से सम्मान करते हैं। इसके अतिरिक्त और कई उपन्यास सफलतायें भी "एक रात" में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती हैं। 'एक रात' की इन्हीं सब विशेताओं के कारण तो मुझे यहाँ यह लिखना पड़ता है कि कोमल जी को एक रात में अधिक अंशों में सफलता प्राप्त हुई है। यदि उनकी इस सफलता का साहित्य-संसार ने उचित सम्मान किया तो इससे इस युवक लेखक का कुछ उपकार ही होगा।

अन्त में "एक रात" और! कदाचित मेरी यह बात कोमल जी को कुच कड़वी लगे। मगर फिर भी मैं कोमल जी को यह सलाह दूँगा कि वे किसी पात्र का चरित्र चित्रण करते हुए अधिक संयम से काम लें। वे जितना ही अधिक अपने को अपने पात्रों के समीप करते जायेंगे, उतना ही अधिक वे लोगों की दृष्टि में एक सफल और सुन्दर लेखक समझे जायेंगे। पर अभी तो कोमल जी के साहित्यिक-जीवन का यह शैशव काल है। वे अपने शैशव काल में जिस प्रगति के साथ आगे बढ़ रहे हैं, उसे देख

कर यह कहना पड़ता है कि निकट भविष्य ही में कोमल जी अपने साहित्यिक-जीवन के सम्पूर्ण अभावों पर अपना अधिपत्य सा जमा लेंगे। उस दिन, उनकी यह साहित्यिक विजय एक लेखक के नाते मेरे हृदय में भी प्रसन्नता और आनन्द की सृष्टि करेगी। इसलिए हम भी कोमल जी के उस विजय-दिन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं।

लेखक-निवास
कटरा, प्रयाग
१-१-३५

—व्यथित-हृदय

—एक—

महल में रहनेवाले अमीर से लेकर, सड़क पर चिथड़ों में मुँह लपेट कर पड़े हुये भिखारी तक जब सो जाया करते तो वह धीरे से चारपाई से उठती और चक्की के पास बने हुये छोटे चबूतरे पर बैठकर चक्की के साथ ही साथ अपना राग छेड़ देती :—

"दुखवा कासे कहूँ परदेसिया हो ना।"

उसका वह राग! बड़ा करुणापूर्ण होता। उसके मीठे स्वरों से छिटक कर जब वह उस छोटे से गाँव में फैल जाता तो

192

प्रकृति काँप-उठती, पत्ते-पत्ते तक हिल जाते सुनने वाले कहते दुखिया है, इस आधी रात में भी पेट की चिन्ता बेचारी को चैन से नहीं सोने देती !

उस दिन रात में चाँदनी थी। आकाश से दूध की एक गहरी धारा सी बरस रही थी। पेड़, पौधे, पत्तियाँ सभी उसमें छन कर ऐसी मौनिमा से खड़े थे, मानों सुधाकर के साथ होता हुआ, प्रकृति का यह नर्त्तन देख रहे हों ! जन-समूह भी निद्रा की खुमारी में मग्न था। यही तो उस दुखिया के गाने का समय है ! वह उठी और अपने चबूतरे पर बैठ कर चक्की के साथ-साथ गाने लगी !

निस्तब्ध संसार ! राग स्वरों से छिटक कर वह चला। उसकी प्रतिध्वनि, पेड़, पौधों और गाँव की टूटी-फूटी दीवालों से टकरा कर गूँज उठी ! जो जग रहा था उसके कानों में दुखिया की आवाज़ पड़ी, जो सो रहा था, वह क्या जाने ? कौन गाता है कौन रो रहा है, इसकी उसे क्या चिन्ता ? पर प्रेम-कुमार का हृदय व्याकुल हो उठा। उसके स्वरों ने उनकी आत्मा के तार-तार बजा दिये ! "इस रात में यह कौन गा रहा है ? किसके गले की यह उन्मादिनी आवाज हृदय में वेदना की सृष्टि कर रही है ? क्या उसकी आँखों में नींद नहीं ! भला इस आधी रात के समय गाना भी गाया जाता है। शायद गाँव की कोई

स्त्री चक्की चला रही है पर उसके स्वरों में तो जादू है ! मैंने इस गाँव में ऐसा स्वर कभी नहीं सुना ! सम्भव हो, वह इसी प्रकार रोज गाती हो और मैं सो जाने के कारण न सुन पाता हूँ !"

प्रेमकुमार विचलित होकर, उद्विग्न मन से चारपाई पर करवटें बदलने लगे ज्यों-ज्यों वे उस मीठे स्वर को अपने कानों से विलग कर देना चाहते थे, त्यों-त्यों उनका हृदय, उस मोहक बीन पर और अधिक निछावर सा होता जाता था। आखिर जब अधिक प्रयत्न करने पर भी निद्रा की खुमारी आँखों में न आई तो वे चारपाई से उठ कर खड़े हो गये ! और स्वरों का तार उन्हें बरबस बाँध कर उसी ओर खींच ले गया जिस ओर से आवाज आ रही थी !

वह एक टूटी-फूटी मिट्टी के दीवालों पर बना हुआ छप्पर का छोटा सा घर था। उसके द्वार पर तो प्रेमकुमार कई बार जा चुके थे ! प्रति-दिन आते और जाते थे ! पर ऐसा आकर्षण कभी न हुआ—जादू का यह मनोहर राज्य इस छप्पर के तले उन्हें कभी दिखाई न पड़ा—स्वरों की यह अमृत वर्षा कभी न उनके कानों में पड़ी !! वे उसी चाँदनी रात में टूटी हुई दीवाल के सहारे खड़े होकर सुनने लगे—वही स्वर-धारा ! वही रागिनी !! उनकी अन्तरात्मा, करुणा या प्रेम से, कौन जाने—भर

उठी। उन्होंने बाँस की बनी हुई टटिया भीतर की ओर धीरे से ठेल दी !

वह चौंक उठी ! नस-नस में कम्पन की एक विचित्र धारा दौड़ गई। झट से चक्की बन्द कर दरवाजे पर, दौड़ी चली आई ! चाँद की रोशनी में देखा—गाँव के मालिक प्रेमकुमार ! वह आश्चर्य में पड़ गई। झट से शिर का वस्त्र सँभाल लिया—चमकता हुआ चाँद पर्दे के भीतर छिप गया और लज्जा से गर्दन झुका कर वह बोल उठी—क्यों बाबू, यहाँ इस समय रात में क्यों खड़े हैं ?

प्रेमकुमार क्या उत्तर देते ? चुपचाप खड़े रहे ! आँखें अभी जिस रूप को देख चुकी थीं, कान जिन स्वरों पर उन्मत्त होकर बेतहाशा यहाँ तक दौड़े आये थे—उनकी अधिष्ठात्री प्रतिमा को अपने सामने घूंघट निकाले हुये खड़ी देखकर वे विचार-विस्मृत से हो गये। क्या कहें—उसकी बातों का कैसे उत्तर दें ! इस रात में एक विधवा के द्वार पर अकेले !! कोई देख ले तो क्या कहेगा ! सचमुच बड़ा भयानक पाप हुआ। कौन जाने, उसने ही अपने दिल में कुछ सोच लिया हो। पर उसके पूँछने का का ढँग तो साधारण है। कितनी सीधी है, कितनी भोली है !! देखते ही झट से अपना घूँघट खींच लिया। अभी बेचारी की उम्र हीक्या है ? दो दिन भी खेलने खाने न पाई और विपत्ति

का पहाड़ टूट पड़ा ! सचमुच कभी-कभी इस संसार में ईश्वर की ओर से ऐसा अन्याय-पूर्ण काम हो जाता है कि उसे देख कर मनुष्य की मानवता भी काँप उठती है।"

"क्यों बाबू!—वह प्रेमकुमार से कुछ सामयिक उत्तर न पाकर बोल उठी—क्या सोच रहे हैं! मैं समझती हूँ मेरे दरवाज़े पर रात में अकेले अधिक देर तक आपका रहना ठीक नहीं! किसी की आँख इधर पड़ जायगी तो हमारे मुख में कालिख पुते बिना न रहेगी। इसलिये आप मुझ पर दया करें।" प्रेम-कुमार की विचार धारा भंग हो गई। उन्होंने एक गहरी साँस लेकर कहा—हाँ तुम ठीक कहती हो! संसार की अन्धी आँखें पाप, पुण्य और सत्य, असत्य का निर्णय करना बिलकुल नहीं जानतीं! मैं तो तुम्हारे गाने को सुन कर यहाँ तक चला आया था। सोचा; इस रात में कौन मीठे स्वर से ऐसा मनोहर गान गा रहा है। अच्छा अब जाता हूँ, तू टटिया बन्द कर ले !!

प्रेमकुमार चले गये। पर वहाँ से अपनी आँखों में क्या भर कर गये, इसके उत्तर में यदि यह कहा जाय तो कुछ असंगत न होगा कि "उसका रूप।"

—दो—

विनोदपुर गाँव के उस छप्पर के घर का जिस दिन चिराग़ बुझ गया, उस दिन हवा की भाँति हाहाकार करके रोती हुई रूपा की तरफ़ देख कर लोगों ने कहा—बड़ी कच्ची उमर है, बेचारी कैसे अपना निर्वाह करेगी। काँटों के रास्ते पर चलना पड़ेगा।" सचमुच बात ऐसी ही थी! अभी तो उसके सिंदूर-डिब्बे का सुहाग का सिंदूर भी नहीं समाप्त हुआ था। सोलह वर्ष की तो अवस्था ही थी! दो वर्ष विवाह के हुये थे और छः

महीने द्विरागमन के! बेचारी, अपने किशोर से घुल-घुल कर बातें भी न करने पायीं! अभी तो दोनों के हृदयों में कामना के बहुत से अध्याय शेष थे! माँ-बाप बचपन में ही मर गये थे, पर किशोर को पाकर सब कुछ भूल गई थी। उसके प्रेम में ऐसा विभोर सा रहती कि देखने वाले दंग रहते! किशोर भी तो उसे प्राणों के समान प्यार करता। जब वह मरने लगा तो अन्तिम बार उसकी आँखों में से जो आँसू निकले थे, वह रूपा के प्रेम ही के आँसू निकले थे! उसने रोते रोते हिचकियाँ लेकर कहा था—रूपा! मेरी रूपा!! अब तुम कहीं की न रही। देखना संसार में सावधानी से आगे पैर बढ़ाना। यहाँ पुण्य करते हुये भी पाप लगता है—धर्म के मार्ग पर चुपचाप जाते हुये भी लोग उँगली उठाते हैं।"

किशोर की जीवन लीला समाप्त हुये आठ-दस महीने हो गये, पर उसके कहे हुये अन्तिम वाक्य जैसे उसके कलेजे से चिपट गये हों—हृदय के पहलू पहलू में समा गये हों! वह दुखिया है, असहाया है—उस गाँव में उसके अन्तर की कथा पूछने वाला कोई नहीं! मरे या जिये, खाये या भूखी रहे, किसी को क्या तात्पर्य! पर फिर भी वह गाँव के लोगों से अपना कम सम्बन्ध रखती किसी के सामने हाथ पसार कर भीख न माँगती। चक्की चलाने का काम करती! जिसको आवश्यकता होती स्वयं नाप

तोल कर अनाज दे जाता और आटा तैयार हो जाने पर फिर वापस ले जाता। जो उसे अपने घर न आने के लिये उलहना देता, उससे वह कहती—क्या करूँ! आज कल का समय बहुत बुरा है। पुण्य करते हुये भी पाप लगता है। अपने घर में पड़ी रहती हूँ, किसी के घर जाने से मतलब क्या? जब तक पेट को यह धन्धा चला जायगा, चला जायगा, नहीं तो उठ कर चाचा के पास चली जाऊँगी।"

किसी को बुरा न लगता। लोग यह सोच कर चुप हो जाते, ठीक कहती है! कच्ची उमर है, किसी के आँखों का क्या विश्वास? लोगों की इसी मानवी सहानुभूति के कारण उसे कभी उपवास न करना पड़ता—रोटी का दो एक टुकड़ा शाम होते-होते पेट में चला ही जाता! सहानुभूति यही कि लोग उसे आटा तैयार करने के लिये अनाज दे जाते! रात भर परिश्रम करती, तो दो पैसे कमा पाती। फिर सहानुभूति कैसी? सहानुभूति तो इसे नहीं कहते! यह तो मजदूरी है—धातु के छोटे छोटे टुकड़ों पर मानवी परिश्रम को मोल लेना है। उसमें करुणा की भावनायें कहाँ? आज स्वस्थ है—चक्की चलाने की शरीर में शक्ति है, दो पैसा कमा लेती है, पर कल बीमार होकर चारपाई पर पड़ जायगी तो गले में कोई एक घूँट पानी तक न डालेगा—कोई शरीर पर हाथ रख कर दिल का दर्द भी न पूछेगा!! संसार है

न ! संसार को किसी दुःखिया के दुःख से क्या तात्पर्य—किसी भिखारिणी की करुण पुकार की उसे क्या चिन्ता ? उसकी प्रगति-इतिहास में तो केवल निःशक्तों को पीसना लिखा है। पर उसे संसार की चिन्ता नहीं—काम की भी परवाह नहीं। जो कुछ दो एक पैसे पाती, आटा खरीद कर खा लेती ! प्रति-दिन का उसका यही तो व्यापार है !!

पर अब वह कई दिनों से दुःखी रहने लगी है। किशोर के मृत्यु के बाद उसने जिस बनावटी संतोष की दुनियाँ में प्रवेश किया था, उसमें फिर एक नये तूफ़ान का बवण्डर दौड़ चला—वह फिर असंतोष के एक गहरे मरूस्थल में इधर से उधर दौड़ने लगी। न चैन से आटा पीसती और न रात को अपने मीठे स्वरों की मनोहर बीन ही बजाती। दिन-दिन भूखी प्यासी चारपाई पर पड़ी रह जाती। कोई ग्राहक आता तो चित्त की अस्वस्थता का बहाना करके लौटाल देती। ग्राहक लौट जाता तो बावली की भाँति अपने आप कह उठती :—क्या करूँगी आटा पीस कर, दो पैसे मिलेंगे, पेट में डाल लूँगी, बस !! पर मान की दुनिया तो उजड़ी जा रही है—मर्यादा के पथ पर काँटे बिखरते जा रहे हैं !! वह प्रेमकुमार ! अवश्य उसकी आँखों में जहर है—वह उस रात में अकेले अवश्य हृदय में वासना की आँधी ही छिपा कर आया था !! भगवान ने कुशल कर

दी ! पर उसकी आँखों से बच निकलना तो साधारण काम नहीं ! जब वे जीते थे कहा करते थे, प्रेमकुमार बड़ा अत्याचारी है—किसी की मान मर्यादा को धूल में मिलाने में उसे तनिक भी रहम नहीं आती ! फिर वह मुझ ग़रीब अनाथ विधवा पर कब रहम करने लगा ? उसके संकेत पर तो सारा गाँव नाचता है ! जो कुछ चाहता है क्षण मात्र में सब से करा लेता है ! धन का उन्माद है न ! संसार में सम्पत्ति भी कभी-कभी मनुष्य को अन्धा बना देती है !

रूपा का हृदय इसी प्रकार की चिन्ता से विदग्ध हुआ करता । किशोर इस संसार से उठ चुका था, पर उसकी स्मृति अब भी उसकी आँखों के सामने नाच रही थी—मृत्यु के साथ साथ उसके मुख से निकले हुये अन्तिम वाक्य इस समय भी उसके कलेजे से चिपटे हुये थे ! इसी से तो वह संसार का विश्वास नहीं करती । किशोर ने कहा था—संसार में सावधानी से क़दम बढ़ाना इसी से वह फूँक-फूँक कर क़दम रखती है । किसी के सामने ज़रा घूँघट भी नहीं हटाती । किसी स्त्री के साथ बात करने लगती है तो मुँह ढका रहता है । मानों संसार को अपना मुँह दिखाना ही नहीं चाहती । उसकी आँखें तो उस पर विश्वास ही नहीं करती—बेचारी डरती है । विधवा है न ! विधवापन भी जीवन के लिये अभिशाप है और

हिन्दू समाज में तो वह एक ऐसी भयंकर ज्वाला है जो जीवन के सम्पूर्ण अस्तित्वों को जला कर भस्म कर देती है। चारों ओर विपत्ति का पहाड़। घर में आपदा, बाहर अपवाद! मार्ग में सीधी चली जाने पर भी लोग उँगुली उठाते हैं—जहर से सनी हुई आँखों की ज्वाला छोड़ते हैं! किसी से बात की नहीं कि झट कलंक की कालिमा मुख पर पोत दी गई—किसी विलासी तथा सौन्दर्य वर्द्धक वस्तु को हाथ से छुआ नहीं कि वेश्या की उपाधि मिल गई। फिर रूपा यदि संसार से डरती है तो बुरा क्या करती है—प्रेमकुमार का वह एकान्त मिलन यदि उसके हृदय में सन्देह की सृष्टि करता है तो अनुचित क्या? वह भी हिन्दू समाज की एक विधवा है न!!

—तीन—

विनोदपुर एक छोटा सा गाँव है। मिट्टी की पुरानी दिवालों पर घास फूस की पचीस तीस झोपड़ियाँ बनी हैं। घास फूस भी इतने मैले और पुराने होगये हैं कि उनके ऊपर एक दृष्टि डालने ही से उनमें रहने वालों की गरीबी का पता लग जाता है। गाँव के बीच में खपरैलों से सजा हुआ मिट्टी का एक बड़ा घर है! इस बड़े घर और उन झोपड़ियों के तरफ़ देखने से यह ज्ञात होजाता है कि गाँव का सारा धन, इस मिट्टी के घर में इकट्ठा होगया है। जिस प्रकार वह मिट्टी का घर मौन रूप से

इन छोटी-छोटी झोपड़ियों पर अपने सुसज्जित पन की प्रभुता प्रगट करता है, उसी प्रकार उस घर के रहने वालों का भी उन झोपड़ियों के निवासियों पर गहरा प्रभुत्व सा है !

पाठक प्रेमकुमार को न भूले होंगे ! वे इसी घर-के मालिक थे। युवक थे—नसों में जवानी का ख़ून था आँखों में यौवन का उन्माद !! विनोदपुर गाँव के सारे मनुष्य इनके नाम से ही डर जाया करते थे ! डरे क्यों न ? वे समझते थे, इन्हीं की दी हुई रोटी, पेट में जा रही है। जिस दिन ये रूठ जायँगे, उस दिन भगवान रूठ जायँगे। कहीं एक रोटी का सहारा तक न मिलेगा। बेचारे भोले भाले ग्रामीण ! अपने इसी, विश्वास के कारण प्रेमकुमार की अनुचित आज्ञाओं पर भी पुतली की भाँति घूमने के लिये तैयार रहते थे !!

प्रेमकुमार इस छोटे से गाँव में बस करके भी शहर की विलासी-परिस्थिति से अछूते नहीं थे ! प्रति-मास अपना सैकड़ों रुपया विलास-वस्तुओं की ख़रीद में ख़र्च कर देते थे। वे विलास वस्तुएँ, जिनका गाँव के भोले-भाले, साधन-हीन मनुष्यों को कभी दर्शन तक नहीं होता ! वे जब उनका उपयोग करते तो गाँव वाले बड़ी आश्चर्य की दृष्टि से उन्हें निहारा करते थे। सोचते, यही तो मेरे भगवान हैं। इन्हीं की भूमि में हम गरीबों की झोपड़ियाँ आबाद हैं—इन्हीं की दी हुई हमारे बच्चे रोटी

खाते हैं ! पर प्रेमकुमार के उस बड़प्पन में विष से भी एक कड़ुआ हलाहल छिपा हुआ था—सीधे-सादे ग्रामीणों के विश्वास से फली हुई लता बेलि को वे बड़ी निर्दयता से उखाड़ कर फेंक देते थे !! वे ग्रामीण, इस अनाचार को अपनी आँखों से देखते अवश्य थे, पर जो उनके हृदयों में रोटी की चिन्ता हल चल मचाती रहती थी, बेचारे देख करके भी अन्धे बने थे !!

विलास वासना की सृष्टि करता है—आँखो में विष मयी ज्वाला घोलता है। मनुष्य पूरे शैतान की भाँति बावला बन कर समाज में अनाचार की चिनगारी उगलने लगता है ! उसकी उस चिनगारी से कितनी कुमारियों का जीवन विपत्ति में पड़ जाता है, कितनी सुन्दरी सतियों की मान मर्यादा पर अपवाद का एक काला धब्बा सा लग जाता है। इसीलिये जो संसार से अलग हैं वे उसकी विलास वस्तुओं से भी अलग ही रहते हैं ! उनकी धारणा है, संसार का दूसरा नाम ही है विलास।

प्रेमकुमार, इन्हीं विलास सामग्रियों के क्रीत दास बन कर फिर उन्हीं भोले-भाले ग्रामीणों की भाँति पाप से कैसे दूर रह सकते थे ? शरीर में जवानी का ख़ून था, आँखों में वासना की आँधी ! घर से बाहर निकलते तो आँखों की वासना का ऐसा जाल फेंकते कि गाँव की भोली-भाली स्त्रियाँ उसे देख

कर डर जाया करतीं, वे अपने हृदय में क्या सोचती होंगी, इसका उन्हें कुछ ध्यान ही नहीं था! चाहे जो समझें भला या बुरा! उनके सोचने समझने से होता है क्या? घास की हिलती हुई पत्तियाँ हैं, उनका अस्तित्त्व ही क्या? बादशाह के महलों की रहनेवाली, राजकुमारियाँ तो हैं नहीं!! फिर भय किस बात का। बोलेंगी—ज़रा विरोध करेंगी तो रोटी छिन जायगी, झोपड़ी उजाड़ कर फेंक दी जायगी, यही नहीं उनके पुरुषों पर झूठा अपवाद लगा कर उन्हें कई वर्षों के लिये जेल भेज दिया जायगा! ओह! ग़रीबी है न!! ग़रीबी में कोई अपनी मान-मर्यादा की रक्षा भी नहीं कर सकता—अत्याचार के विरोध में मुँह खोलकर जीभ तक नहीं चला सकता!!—बेचारी अपना घूँघट नीचे खिसका कर आँखों में लज्जा का घूँट पी लेतीं।

पर प्रेमकुमार! उन्हें तो लज्जा नहीं थी—उनकी आँखों में उन्हीं की भाँति तो भय नहीं था! उनकी आँखें जिनके सौन्दर्य पर लग जातीं, जिसके उठे हुये चेहरे की दौड़ती हुई मादकता उनकी आँखों में समा जाती, उसे तो वे अपनी वासना का शिकार बना कर के ही छोड़ते! भय से, ताड़ना से, लालच से, प्रपंच से—चाहे जिससे उसकी मानवी मर्यादा को मिट्टी में डाल करके ही संतोष लेते!! पर अभी तक रूपा के सौन्दर्य की

ओर उनकी आँखें न गई थीं—उसके घूँघट में छिपे हुये दूसरे चाँद को वे न देख पाये थे! इसका एक कारण था, वह घर से कभी बाहर निकलती नहीं थी—किसी के सामने अपना घूँघट हटाती ही नहीं थी! मानों यही घूँघट ही उसके लिये एक अस्त्र था, जिससे वह अभी तक प्रेमकुमार की विष बुझी आँखों से बची रह सकी थी! पर उस चाँदनी रात में जब से प्रेमकुमार की आँखों ने रूपा के सौन्दर्य का घूँट पी लिया, तब से उनके मानस में असन्तोष की एक गहरी हलचल मचा करती वे चार-पाई पर पड़े-पड़े कुछ सोचा करते—मौन रूप से किसी सौन्दर्य प्रतिमा की ओर निहारा करते! ऐसा ज्ञात सा होता है मानो उनके आगे एक गहरी खाई सी खुदी हो और वे उसी को पार करने के लिये उचित उपायों का सहारा ढूँढ़ने में लगे हों!!

घन्टों उदास रहा करते—एकान्त में बैठकर सोचा करते। उस दिन से उनके अधरों पर किसी ने मुसुकुराहट देखी ही नहीं! उनकी स्त्री प्रतिमा ने, बहुत कुछ जानने की कोशिश की, पर उसे भी उन्होंने कुछ न बताया। वह भी तो उनकी प्रकृति को जानती थी। चुप रह गई। कई दिन बीत गये, पर उनकी उदासी न गई—उनकी गम्भीरता का तार न टूटा! वे मन ही मन सोचते—कितनी सुन्दरी है! कैसा भोला पन है! बोलती है तो मानों अमृत के घड़े ढुलक रहे हों! पर विधवा है, कोई

अनर्थ हो जाय तो !" प्रेमकुमार इसी चिन्ता में निमग्न रहते ! यदि रूपा विधवा न होती तो उन्हें उसे अपनी वासना के भयङ्कर मरुस्थल में छोड़ देने में इतना संकोच न होता ! पर यह तो संकोच नहीं !! यह तो एक भय है ! कब तक रह सकता है ! जिस वासना ने उनकी मानवी भावनाओं की तरुलता को उखाड़ कर उन्हें यहाँ तक पहुँचाया है। वह भय की इस हिलती हुई बोलि को कब तक टिकी रहने देगी ! ओह वासना का उन्माद, मनुष्य की मानवता को भी जेतना शून्य कर देता है !

—चार—

रात का गहरा अन्धकार उमड़ कर जब बह चला और संसार के साथ ही साथ वह छोटा सा गाँव विनोदपुर—उसकी लहरों में समा गया तो प्रेमकुमार धीरे से अपनी चारपाई से उठ कर, उस छप्पर के अंधकार पूर्ण द्वार पर जाकर खड़े हो गये ! कुछ देर तक खड़े रहने के बाद उन्होंने द्वार पर दी हुई बाँस की टटिया भीतर की ओर ठेल दी ! और फिर निधड़क भीतर चले गये ! पर ज्योंही वे भीतर पहुँचे, उसी समय धुँधले दीपक के

प्रकाश में अपना सौन्दर्य चमकाती हुई झोपड़े की मालकिन उनके सामने आकर खड़ी हो गई! हाथ में चिराग़ था, घूँघट खिसका था, केश खुले हुये थे। मानो स्वतन्त्रता से अपने उस स्वर्ग में बिहार करती रही हो! प्रेमकुमार उसकी अल्हड़ रूप राशि को देखकर विचलित हो उठे! उसके सौन्दर्य की मादकता उनकी आँखों के कोने-कोने में छा गई। वे अपनी छुरी सी ज़ुबान चला कर कुछ कहना ही चाहते थे कि सहसा उसके काँपते हुये हाथ से चिराग़ गिर कर दो टूक हो गया। घर में अन्धकार ही अन्धकार छा गया! प्रेमकुमार ने सोचा, इस अन्धकार में डर कर कहीं भाग न जाय! उन्होंने उसी अन्धकार में उसे पकड़ने के लिये अपना हाथ आगे फैलाया। पर यह क्या वह तो चिराग़ के साथ ही साथ गिर गई है! प्रेमकुमार आकुल से हो उठे। शरीर पर हाथ रख कर देखा तो मानो पसीने की दरिया लहरा रही हो! सोचा, छोड़ दें बेचारी को—निकल चलें इसके इस स्वर्गिक महल से! पर वासना का उन्माद! बगल में बैठ कर रूमाल का पंखा झलने लगे!!"

"कौन बाबू!—उसने होश में आकर कहा—मुझे न छेड़ो—इसी रात के भयानक अन्धकार में इस छप्पर के नीचे से बाहर भाग जाने दो! मैं विधवा हूँ—दैव की मारी भिखारिणी हूँ। मेरा सर्वस्व लुट चुका है, यही एक मान-

मर्यादा ही तो शेष है !! इसे न कुचलो, यह मेरे अभिमान की चीज़ है !"

वह उठ कर बैठ गई और दौड़ कर बाहर भाग जाना चाहती थी कि प्रेमकुमार ने उसकी कोमल कलाई कस कर अपने हाथों में पकड़ ली। उसकी आत्मा गाय की भाँति तड़प कर रह गई—जैसे कोई कसाई उसके ऊपर-तीव्र धार वाले छुरे का वार कर रहा हो। उसने भयभीत आँखों से फिर कहा—नहीं; नहीं !! मुझे छोड़ दो मैं विधवा हूँ ! विधवा की मान-मर्यादा नष्ट करने में क्या तुम्हें संकोच नहीं मालूम होता ? मैं निराश्रिता हूँ—असहाया हूँ ! मेरे इस बचे-खुचे जीवन अवलम्ब को न नष्ट करो ! इसी के भरोसे तो मैं इस गाँव में रह पाती हूँ—अपनी इस झोपड़ी में बैठ कर सन्तोष की दो रोटियाँ खा लेती हूँ !! तुम अन्नदाता हो—गाँव के मालिक हो ! मैं तुम्हारे टुकड़ों पर पलने वाली तुम्हारी पुत्री सी हूँ ! पुत्री के साथ यह राक्षसी व्यवहार ! ओह भगवान् रक्षा करो ॥

वह फिर बेहोश हो गई ! उसकी अन्तरात्मा के सभी तार, बीणा की तरह झंकार मार रहे थे ! मानों चिल्ला कर इस गर्हित्त काण्ड का विरोध सा कर रहे हों ! पर वासना की पागल शक्ति के सामने विरोध का क्या आस्तित्व ? वह जब आँधी की भाँति प्रचण्ड बन कर मानवी तरु-लताओं को उखड़ती हुई

बढ़ती है तो उसे फिर पाप, पुण्य, सत् असत् का बिल्कुल भय नहीं रह जाता ! उस समय भाई की आँखें बहन के भी सौन्दर्य में वही उन्माद देखती हैं, जो किसी प्रियतमा के सुन्दर स्वरूप में !! प्रेमकुमार की भी यही दशा थी। उन्होंने बड़े प्रयत्न से उसको जगा कर कहा:—"रूपा तू क्यों डरती है ! मैं कोई चोर डाकू या लुटेरा तो नहीं ! मैंने तुम्हरा हाथ जब अपने हाथ में लिया है ! तो तुम्हें सुख दूँगा—तुम्हारी विपत्तियों को दूर कर तुम्हें चिन्ता रहित बनाऊँगा ! सोचो तुम्हीं ! तुम्हारा यह रूप और यौवन, यदि किसी को तुम्हारी ओर आकृष्ट करता है, तो उसका दोष क्या ? उठो, मैं तुम्हारे सामने घुटने टेक कर तुम्हारे प्रेम की भिक्षा माँगता हूँ !"

" नहीं, रूपा डरी हुई ज़ुबान से बोल उठी—ओह, डाकू लुटेरों से मुझे इतना भय न लगता, जितना इस समय आपको देख कर लग रहा है। वे आते मेरे टूटे फूटे बर्तन उठा ले जाते, बस ! और कुछ करते, गले पर छुरी मार देते ! पर हाय आप तो उसे, जिसे मैंने अपते हृदय में छिपा कर रक्खा है, जिस पर इस विधवावस्था में भी मैं अभिमान करती हूँ। कुचलने का बुरा साहस कर रहे हैं ! वह मेरी इन आँखों की ज्योति है, मैं उसी के प्रकाश में अपना काम करती हूँ, वह मेरे इस अभागे जीवन का अनमोल सम्बल है, उसी के शक्ति पर मैं जीवन-कार्ग में आगे

बढ़ी जाती हूँ । मैं सुख नहीं चाहती, राज्य नहीं चाहती !! बस, यही चक्की और वही अपना स्त्रीत्व । मुझ ग़रीबनी के ऊपर दया करो—मुझे छोड़ कर यहाँ से चले जाओ !! मैं आपको प्रेम की भिक्षा देने योग्य नहीं ! आप अन्न दाता, मालिक और मैं अस्तित्व हीन गाँव की ग़रीब विधवा ।'

"रूपा—'प्रेमकुमार ने आँखों में रुखाई का भाव भर कर उत्तर दिया—तुम अब मेरे चंगुल से छूट नहीं सकती ! मेरा हृदय कोमल अवश्य है, पर तुम्हारी ये मान-मर्यादा की बातें उस पर प्रभाव नहीं डाल सकतीं ! किसी भी उपाय से क्यों न हो ? तुम्हें मेरी बात माननी ही होगी—मान कर अपना प्रेम-दान देना ही होगा । पर मैं तुम्हारे इस सौन्दर्य आवरण से ढँके हुये कोमल शरीर को देख कर, उस पर अत्याचार करने से हिच-किचाता हूँ—इसलिये चाहता हूँ, तू अपनी प्रसन्नता-पूर्वक, मेरी दी हुई सुख की सम्पत्ति को अपने हाथों में ले लें ! नहीं तो विवश होकर तुझे अन्य उपायों का अवलम्बन लेना ही पड़ेगा ।"

प्रेमकुमार की उन्मादिनी आँखों के सामने एक साधारण स्त्री में इतना साहस ! बड़े-बड़े तक शिर उठा कर बात न कर सकते थे—पाप या पुण्य, धर्म या अधर्म जो कुछ करते ! सब प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर लेते । पर यह रूपा ! मानो डरती

ही नहीं रोटी के टुकड़ों की उसे चिन्ता ही नहीं! धर्म पर विश्वास करती है न—उसके भोले-भाले जीवन से धार्मिक भावना लिपट सी गई है! वह इसके अतिरिक्त और कुछ जानती ही नहीं! पर प्राणों की ममता भी तो बड़ी कठिन है! प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए मुख से चाहे कोई जो कुछ कह दे, पर उत्सर्ग की वेदी पर साधारण—प्रकृति के मनुष्यों की आँखों में ममता के आँसू आही जाते हैं—वे अत्याचारी के अत्याचारों से भयभीत होकर उसके सामने विवशता-पूर्वक अपना मस्तक झुका ही देते हैं! रूपा, कोई साहस की प्रतिमा थी नहीं! गाँव की साधारण स्त्री—एक केवल धार्मिक भावना थी। अत्याचार का एक गहरा झोंका आया उसे उड़ा ले गया। वह आँखों में विवशता के आँसू भर कर कहने लगी—बाबू! आप अन्नदाता हैं, मालिक हैं! आपही की दी हुई तो एक रोटी पेट में जाती है फिर आपकी बातों का बिरोध किस हिम्मत से करूँगी? आपकी आज्ञा कैसे न मानूँगी! मैं तो आपके पैरों की जूती हूँ। यह तो मेरी क़िस्मत है, जो आपसे प्रतिष्ठा पा रही हूँ। किन्तु…

किन्तु क्या रूपा!—प्रेमकुमार ने मन में अपनी विजय पर हँस कर कहा—साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती? क्या तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति सन्देह है! तुम समझती हो मैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर तुम्हारे साथ विश्वासघात करूँगा?"

"हाँ यही बाबू :—रूपा ने लजा कर उत्तर दिया—मैं विधवा हूँ। फिर कहीं की न रहूँगी।"

वासना की मदिरा, जो प्रेमकुमार की आँखों में नाच रही थी, माया और प्रलोभन के रूप में उस भोली-भाली रमणी के सामने बिखर उठी। वह उसे न पहिचान सकी—उसके मायावी अस्तित्व को न जान सकी, जान ही क्या सकती थी? संसार के प्रपंचों से दूर की थी—प्रलोभनों और मायावी दृश्यों को कभी देखा भी न था! इसी से तो उसकी वह महा पतन के साथ अभिनय करने लगीं। यदि उस लीला से, रात की निस्तब्धता भी काँप उठी हो तो आश्चर्य क्या?

—पाँच—

सायंकाल का समय था। सूर्य भगवान् घायल सिपाही की भाँति लाल रक्त का झरना उगल कर पश्चिम की ओर ढुलक रहे थे! रूपा जब अपना मिट्टी का घड़ा लेकर कुएँ पर गई तो उसकी ओर दृष्टिपात करके एक स्त्री ने कहा—आज-कल तो तुम्हारा रंग ही बदलता जा रहा है रूपा! न शरीर में वह सौन्दर्य रहा गया और न स्वास्थ्य। जैसे पीली पड़ती जा रही हो! मुँह की रंगत भी अजीब होगई है! माजरा क्या है? क्या कोई रोग हो गया है!

कहने वाली स्त्री अपनी कला में बड़ी चतुर थी। रूपा उसे भली-भाँति जानती थी! क्या मजाल की, उससे किसी के पेट के अंदर की बात छिपी रहती! उसके पास जैसे कोई चित्र-यंत्र हो! आकृति देकते ही झट से आन्तरिक दृश्यों का चित्र उतार लेती। मर्दों को वह अपनी उँगली पर नचाती। प्रेम-कुमार तक उसका लोहा मानते। उसकी बातों की दाद देते! वह तो उनकी अस्त्र सी थी। जहाँ किसी से काम न बनता, वहाँ वे उसी की नियुक्ति करते थे! फिर उसकी यह बात कैसे उपेक्षणीय होती? पानी लेने के लिये कुएँ पर खड़ी दूसरी स्त्री की दृष्टि भी रूपा की आकृति पर जा पड़ी। उसने भी उसी के स्वर में स्वर मिला कर कहा—हाँ बहन! तुम तो बिल्कुल ठीक कहती हो, जैसे उसके……। और आज कल यह चक्की भी तो नहीं चलाती। वेश भूषा भी उसका अब वह पुराना नहीं रहा!"

रूपा सकपका गई। हृदय में विद्रोह सा मच गया। एक तो निराश्रया दूसरे अपराधिनी!! क्या उत्तर दे? उत्तर भी देती तो क्या? पतन के जलते हुये तवे पर उसने भूल से हाँथ तो रक्खा ही है? कोई दूसरी बात होती तो वह छिपा भी लेती, पर पाप की सृष्टि! कैसे छिपा सकती है! अपराधिनी की भाँति गर्दन झुका लिया! मानों उनकी बातों का स्वागत कर

रही हो ! उसे चुप देख कर वह चालाक स्त्री फिर बोल उठी :— रूपा तू तो बड़ी पतिव्रता थी। कहती थी संसार का विश्वास न करूँगी। किसी से घूँघट उठा कर बात न करूँगी ! कौन जाने किसकी आँख कैसी है ? पर अब तुमने यह क्या कर डाला ? क्या तुम्हें अपने मान-अपमान का भय नहीं ! ”

मान अपमान ! रूपा काँप उठी। उसकखी नस-नस में बिजली की एक धारा सी दौड़ चली। आँखों के कोने-कोने में रोष की चिनगारियाँ चमक उठीं। पर क्या करे, अपराधिनी ! यदि अपराध न किया होता तो वह अवश्य उसे सैकड़ों गालियाँ सुनाती ! मान-अपमान का रहस्य वह क्या जाने वह तो स्वयं मान अपमान की दुनियाँ की भिखारिणी है— कंगालिनी है ! एक नहीं, सैकड़ों घरों में आग लगा दी—सहस्रों स्त्रियों के जौहर को बर्बाद करने में सहायता दी ! और वही आज उसे मान-अपमान की शिक्षा दे रही है ! समय है न ! उसे क्या मालूम कि रूपा अपने मान-अपमान के लिये काफी संघर्ष कर चुकी है ! यदि उसमें शक्ति होती—साहस होता और होता अन्यान्य स्त्रियों की भाँति पति का साधन तो वह प्रेमकुमार की पाशविक अत्याचार की बात को भी पैरों से कुचल डालती ! पर निस्सहाया, गरीब, अबला !! कर ही क्या सकती थी ? उस पाशविक शक्ति से उसका

छुटकारा तो होता न ! मरे हुए मन से पतन को स्वीकार कर लिया !!

उसकी ज़हर से कड़ुई बात सुन कर रूपा की आँखों में आँसू आ गये ! वह जिस कल्पना से डर कर कभी चेतना सून्य हो गई थी, वही आज साक्षात् प्रतिमा सी उसके आगे खड़ी हो गई ! वह काँप उठी ! उसके अन्तर का कोना-कोना चिल्ला उठा। पर क्या कर सकती थी ? चुप-चाप पानी लेकर घर चली गई पर घर तो उसका कोई दुर्ग था नहीं—बेचारी ने पानी का घड़ा कोने में रक्खा ही था कि वह वहाँ भी पहुँच गई। और लगी उसे छेड़ कर सच्ची घटना का पता लगाने ! विपत्ति का पहाड़ सामने तो था ही—रूपा ने लाचार होकर कह दिया—हाँ बहन ; भूल हो गई। प्रेमकुमार ने·········पर अब क्या करूँ ?"

प्रेमकुमार का नाम सुन कर के ही उसके होश उड़ गये। भला प्रेमकुमार बाबू और उनके नाम के आगे अपवाद !! रूपा के मुँह पर यह बात कैसे आई क्या उसके अब सचमुच दुर्दिन आ गये ? यदि कहीं बात उनके कानों में पड़ गई तो फिर इसके शरीर की ज़रा सी चमड़ी भी समूची न बचेगी ! पर कहेगा कौन ? किसके ज़ुबान में ऐसी शक्ति है जो उनके नाम के आगे यह काला अपवाद लगावे ! सारा गाँव उनकी दी हुई

रोटी खाता है—उनकी भूमि में बसा है ! कौन अपनी झोपड़ी उजड़वाना चाहेगा—कौन अपने बाल बच्चों को भूखा मरवाना चाहेगा ? कोई नहीं ! यदि बात सच हो तब भी इस अभागी को इस तरह उनका नाम नहीं लेना चाहिये ! विश्वास भी तो कोई न करेगा :—वह अपने दिल में कुछ देर तक सोच कर कहने लगी—रूपा ! यह तू क्या कह रही है ? प्रेमकुमार-ऐसे भले आदमी के मस्तक पर क्यों कलंक का टीका लगा रही है ? यदि वे सुन पायेंगे तो तुम्हारी कौन सी दुर्गति करेंगे, जानती हो ?"

दुर्गति क्या करेंगे ?—रूपा आँखों में रूखाई भर कर बोल उठी, कुछ झूठ तो कहती नहीं ! उन्हीं ने तो मुझे धोखे में डाल कर मेरी यह दुर्दशा की है ! क्या अब भी दुर्गति की कोई सीमा शेष हैं ! मैं तो समझती हूँ, संसार में अब कोई ऐसी दुर्गति की कोई सीमा शेष है ! मैं तो समझती हूँ, संसार में अब कोई ऐसी दुर्गति नहीं, जो अपनी शक्ति के साथ मेरे इस असहाय जोबन पर न बरस चुकी हो !! यह उस दुर्गति ही का तो प्रभाव है कि तुम भी आज शिर उठा कर मेरे सामने बात करती हो ! एक दिन वह था, जब मैं तुम्हारी ऐसी स्त्रियों से बोलना बात-चीत करना तक पाप समझती थी, पर आज स्वयं अपने पापों के भार से दबी जा रही हूँ ! यदि प्रेमकुमार मेरी दुर्दशा न करते

तो आज मैं तुम लोगों के सामने क्यों इस प्रकार लांच्छिता होती ! तुम्हें उनका डर है, रहे, पर मैं तो एक बार पाप के अंधकार-पूर्ण कुँये में गिर कर, अब न गिरूँगी—जो कुछ सत्य है उसे भरी सभा में कहूँगी !!"

उसने घृणा की दृष्टि से रूपा की ओर देखा। और फिर थोड़ी देर तक बैठ कर उसकी छाया बचाती हुइ चली गई। वह वहाँ से हटी नहीं कि सारे गांव में आँधी सी आगई ! छोटासा गाँव, इस ख़बर को फैलते हुये कितनी देर लगती ! बूढ़े, बच्चे, जवान, सभी की ज़ुबान पर बात आगई ! कोई उत्सुकता से उसका दरवाजा झाँक जाता और कोई कहता, न जावो, पाप की मूर्त्ति है ! उसके द्वार पर जाते हुये भी अपने को पाप लगता है ! प्रेमकुमार के कानों में भी बात पड़ी। बात क्या पड़ी ? वे तो जानते ही थे ! पर अपवाद कौन शिर पर ले ! लोग कहेंगे भलामामनुष होकर ऐसा कर्म !! किसी ने देखा भी तो नहीं ! फिर किसी की क्या हिम्मत जो ज़ुबान डुलावे !! पर यदि, कहीं रात में अपवाद के डर से आत्म हत्या कर ले तो ! प्रेमकुमार ने कुछ देर तक सोंच कर अपने एक नौकर को बुलाया और उसे रात भर रूपा के द्वार पर पहरा देने के लिये कहा ! गाँव वालों को इस पहरे का रहस्य जानने की उत्सुकता होने पर भी कुछ ज्ञात न हुआ !!

गाँव में भयंकर पाप! धर्म की भ्रान्ति-मयी व्याख्या करने वाले भोले भाले ग्रामीणों की आँखों में रात भर नींद न आई! किसी-किसी ने तो जल का एक घूँट भी गले के नीचे न उतारा! कोई-कोई तो प्रेमकुमार के पास दौड़ कर गये और अपने धार्मिकपन का नगाड़ा पीटते हुये कहने लगे—बाबू! गजब हो गया! किशोर की स्त्री रूपा ने अपना मुँह काला कर लिया है। उस पाप की मूर्त्ति को गाँव में रहते हुये हम लोग कैसे पानी पियें! प्रेमकुमार ने सबको समझा बुझा कर शान्त किया! संसार कितना विचित्र है! उसमें किस तरह निरपराध का गला घोंटा जाता है! किस तरह उसके मानवी अस्तित्वों को कुचल कर उसे दुःख के भयानक मरुस्थल में फेंका जाता है! प्रेमकुमार! अपराधी तो वही हैं—उन्होंने तो इस पाप की सृष्टि की!! पर उनकी ओर कौन उँगली उठा सकता—उन्हें कौन दोषी बना सकता? दोषी बनाने को कौन कहे? उन्हीं के हाथों में इस पाप-काण्ड के फैसले की बाग-डोर दी जा रही है! ओह संसार की पाशविक प्रगति में, न जाने कितने गरीब बिना अपराध किये ही पिसे जाते हैं!!

उधर रात बीती पूरब से सूरज की किरणें निकलीं और इधर प्रेमकुमार के द्वार पर गाँव के मनुष्यों की भीड़ एकत्रित होने लगी! घरों में घूँघट काढ़ कर रहने वाली स्त्रियाँ भी आस

पास ओट में छिप कर, इस रहस्य का अभिनय देखने लगीं! तरह-तरह की बातों से वह जन-समूह गूँज उठा था। कोई रूपा को कुत्सिता बता कर गाली देता था और कोई उसकी अज्ञानता पर दया प्रगट करता था। प्रेमकुमार ने रूपा को अपने द्वार पर बुलाकर उन मनुष्यों के सामने कहा:—"रूपा! तुम विधवा हो! पर विधवा होकर के भी तुमने जिस पाप की सृष्टि की है, उससे सारे गाँव में हलचल सी मच गई है! तुम्हारे इस भयंकर पाप के कारण गाँव के मनुष्य अब तुम्हें अपने इस गाँव में नहीं रहने देना चाहते। इसलिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम इसी समय इस गाँव को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चली जाओ।"

प्रेमकुमार के मुख से भाग्य का यह निर्णय! रूपा काँप उठी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा सा छा गया। पर निर्वासिता! लाँच्छिता!! फिर भय किस बात का! वह आँखों में क्रोध का भाव भर कर प्रेमकुमार की ओर देख कर कहने लगी:—"नीच! मुझे पतित कहने के पहिले तू एक बार अपने को पतित कह ले! नहीं तो आसमान हिल जायगा—पृथ्वी दहल उठेगी!! क्या किसी गरीब विधवा के जीवन को नष्ट कर उसके प्रति अपने मुख से यह निर्णय देते हुये तुम्हें लज्जा नहीं मालूम होती? क्या तुम्हें वे घड़ियाँ इतनी जल्द भूल गई जब तुमने मेरी आँखों के

सामने प्रलोभनों का जाल फेंकते हुये कहा था—"रूपा ! मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ, तो तुम्हारा पालन करूँगा—तुम्हें अपनी बना-कर रक्खूँगा, पर अब यह विश्वासघात ! तुम्हारा यह विश्वास-घात ही तुम्हें काले सर्प की भाँति डस कर मेरे साथ ही साथ तुम्हें भी इस दुनियाँ से मिटा देगा।"

रूपा की बात पूरी भी न होने पाई थीं कि प्रेमकुमार कड़क उठे। उन्होंने एक उद्दण्ड-शासक की भाँति डाँट कर कहा—"पापिनी ! जा हट जा मेरी आँखों के सामने से ! नहीं तो जिस जीभ से तू मेरे ऊपर झूठा अपवाद लगाने का दुस्साहस कर रही है, उसे अभी कैंची से काट कर दो खण्ड कर डालूँगा।"

"कुछ चिन्ता नहीं—उसने भी उसी स्वर में उत्तर दिया पर कहूँगी वही जो सत्य है ! एक दिन इसी पाशविक शक्ति का जाल बिछा कर तुमने मुझ पर विजय पायी थी, पर आज नहीं पा सकते—उसका भय दिखाकर अपने अपवाद की बात नहीं छिपा सकते ! चाहे जुबान काट लो, चाहे जान से ही क्यों न मार डालो ? पर मैं फिर कहती हूँ कि तुम नीच हो और तुम्हारी ही नीचता का यह प्रतिफल आज मुझे भोगना पड़ रहा है।" यदि तुम अपने प्रपंचों का जाल बिछाकर मेरे स्त्रित्व को धूल में न मिलाते तो आज पापाचारी प्राणियों कि शक्ति मेरी ओर उँगली उठाने की न होती। तुम आँख और विचारों के अन्धे

बन कर मुझे निर्वासन का दण्ड दे रहे हो, पर मैं तुमसे यह कहे देती हूँ कि तुम्हें भी मेरी ही भाँति इस भयानक पाप का बुरा परिणाम भोगना पड़ेगा !

सत्य-सत्य ही है ! वह कब छिप सकता है। प्रेमकुमार कुछ हतप्रभ से हो गये ! पर यह कड़ुवा अपमान तो वे सह नहीं सकते थे। कभी किसी से सहा नहीं था ! हमेशा शिर ऊँचा उठा रहा ! भय से, सम्मान से किसी भी प्रकार से क्यों न हो, लोग उनका आदर से सम्मान करते ही रहे ! फिर एक साधारण स्त्री, उसकी क्या शक्ति ! प्रेमकुमार, कुर्सी से हाथ का बेंत हिलाते हुये उठे और सब की आँखों के सामने ही सटासट उसकी पीठ पर दो चार छः दस बरसा दिये। जिसके हृदय में करुणा थी, वह रो उठा। जिसका कलेजा बज्र का था, उसने कहा—"पापिनी है, प्रेमकुमार बाबू ठीक ही कर रहे हैं ! पर किसी ने उसके ऊपर करुणा न की ! वह बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ी।" प्रेमकुमार ने बड़ी निर्दयता से अपने आदमियों द्वारा उसे गाँव की सीमा के बाहर पहुँचवा दिया। वह अभागिनी, कब तक अचेत अवस्था में, उस स्थान पर पड़ी रही, यह कौन जाने ?

—छः—

फटे हुये कड़े-चिथड़ों की बनी हुई गूदड़ ! मिट्टी का दो एक खिलौना वर्तन, यही उसका वैभव था ! वह दिन-रात मधुसूदनपुर गाँव के एक पेड़ की छाया के नीचे पड़ी रहती। कभी भीख माँगने भी नहीं जाती। किसी को देखती तो सिकुड़ कर बैठ जाती, मानो कुछ छिपा रही हो ! कोई पगली कहता, कोई अभागिनी ! पर फिर भी उसे दो मुट्ठी अनाज मिल जाता। वह उसी को अपनी मिट्टी की हाँडी में पकाती और खाकर सो जाती !!

अभी उसे उस गाँव में आये हुये अधिक दिन नहीं हुये थे, केवल आठ ही महीने !! पर एक दिन जब वह अधिक उदास होकर, आकाश की ओर करुणा से देख कर कुछ सोंच रही थी तो उस ओर से निकल कर जाती हुई मधुसूदनपुर गाँव की एक स्त्री उसके पास जाकर बैठ गई। वह उसे देख कर सावधान सी हो गई। पर मुख की उदासी न छिपा सकी। उसने उसकी दशा देख कर कहा:—"क्यों रे पगली ! आज तू उदास क्यों है ? पर यह क्या ? तुम्हारे तो जैसे……। क्या समय निकट है ओह ! तब तो बड़ा अनर्थ हुआ !"

भिखारिणी की आँखों से आँसू निकल आये ! उसके लिये यह पहिला ही अवसर था जब किसी ने सहानुभूति और करुणा से उससे इस प्रकार का प्रश्न किया हो ! वह नहीं तो कह सकती नहीं ! पाप की सृष्टि है न !! चिल्ला रही है—अपने आस्तित्व का नगाड़ा पीट रही है—बेचारी आँखों में अन्तर की सारी व्यथा भर कर कहने लगी—"हाँ बहन, अभागिनी हूँ, पातकी हूँ ! मेरी छाया न स्पर्श करो दूर हट जाओ ! संसार ने मुझे अपनी गोद से निकाल कर बाहर फेंक दिया है—मेरी मान-मर्यादा को, अपनी राक्षसी शक्ति के बल पर लूट कर भिखारिणी बना दिया है ! पर भिखारिणी ! नहीं, भिखारिणी का भाग्य तो सुन्दर होता है, वह गले में झोली डाल कर भीख तो माँग लेती है ! पर

हाय, मैं तो भीख भी नहीं माँग सकती—किसी के सामने कुछ देर तक खड़ी होकर करुणा की प्रार्थना भी नहीं कर सकती। पातकी हूँ ? लोग उँगुली उठाते हैं—करुणा की भीख देने के बजाय व्यंग्य की हँसी हँसते हैं ! इसीलिये तो इस वृक्ष की छाया में दिन रात पंगुल की भाँती पड़ी रहती हूँ—कभी तुम्हारे गाँव में भी नहीं जाती। कोई पगली कह कर चिढ़ाता है कोई कुत्सिता !! चुपचाप सह लेती हूँ, क्या करूँ भाग्य की मारी हूँ न !"

भिखारिणी की दुःख से भरी बातें सुन कर स्त्री करुणा से काँप उठी। उसने उससे सहानुभूति के साथ पूँछा—"तो क्या······ में दर्द है ? फिर क्या सोचा है ? क्या करोगी—कहाँ जाओगी ? क्या इसी पेड़ के तले ·····?

भिखारिणी:—"संसार से ठुकराई हुई !! कहाँ जायँ ? कहीं आश्रय तो है नहीं ! वह आँखों में विवशता का आँसू भर कर चुप रह गई—उत्तर ही क्या देती ? कोई विशाल दुर्ग या छोटी झोपड़ी भी तो है नहीं कि उसे बता दे—कोई शक्तिशाली साधन तो है नहीं कि अभिमान से उसकी ओर उँगुली उठा दे !! जिस वृक्ष की छाया में वह रोटी का एक टुकड़ा खाकर अपना जीवन पालती है, वही उसकी पाप की सृष्टि को भी आश्रय देगा ! वह वृक्ष है तो क्या ? पर पुरुषों की भाँति कठोर

तो नहीं है! जड़ है तो क्या मनुष्यों की तरह चेतना शून्य तो नहीं है!! पापी या अभागा, चोर या डाकू, चाहे कोई उसकी छाया में जाकर बैठ जाय, वह किसी से घृणा नहीं करता! सब को समान सुख देता है! प्रकृति की यह मूक दुनियाँ, संसार के मनुष्यों से कहीं अधिक गौरव की वस्तु है!!

स्त्री भिखारिणी से कुछ उत्तर न पाकर उठ कर चली गई, भिखारिणी की आँखें, उसकी ओर से सजल होकर लौट आयीं, कदाचित् उसने सोचा, यह मेरी सहायता करेगी, मुझे थोड़ा सा आश्रय देगी!! पर संसार तो इतना करुणा शील है नहीं किसी भिखारिणी के ऊपर तो वह करुणा करना जानता ही नहीं! फिर उस साधारण प्रकृति की स्त्री से करुणा की कैसी आशा!! दुःखिया का हृदय है—सहायता का अभिलाषी है!! किसी की थोड़ी सहानुभूति भी उसे दया और करुणा की भाँति प्यारी मालूम होने लगती है।

उस समय संध्या हो रही थी। अन्धकार धीरे-धीरे गाढ़ा बन कर संसार के ऊपर फैल रहा था! भिखारिणी पीड़ा से काँप उठी! पर उसने अपनी इस आन्तरिक पीड़ा को जैसे सँभाल सा लिया! उस समय तो उसका हृदय एक दूसरी ही वेदना से व्यथित हो रहा था! वह सोचती थी जिस गाँव में आठ महीने तक मैं पगली बन कर रह चुकी हूँ, उसी में कल अपराधनी

बन कर कैसे रहूँगी ? कैसे पाप की कालिख से पुते हुये मुख को, लोगों को दिखाऊँगी ! क्या उस समय लोग मेरी ओर भर्त्सना न करेंगे—"सम्भव हो मेरी दशा पर दया दिखा कर कोई दो-चार दिन के लिए अपने झोपड़े में आश्रय दे ही दे, पर इसके बाद क्या मैं दुतकार की वस्तु न बन जाऊँगी ? और अभी वह स्त्री भी गाँव में गई है !! लोगों से वह अवश्य ही मेरे पाप की चर्चा करेगी ! कौन जाने विनोदपुर की भाँति, इस वृक्ष की छाया से मैं अलग कर दी जाऊँ ! पापनी हूँ न !! पापिनी को भला कौन अपने गाँव में रहने देगा ! जिस गाँव में इतने दिनों तक रह चुकी थी, जिस गाँव में लोग अपनी जाति बिरादरी के थे, जब उसी गाँव से कुत्ते की भाँति निकाल दी गई तो फिर इस गाँव की क्या आशा, ये क्यों मुझ पर रहम करने लगे ? रहम की भीख पाने के लिये तो भाग्य चाहिये न ! मेरे भाग्य की दुनियाँ तो उजड़ चुकी है !!"

भिखारिणी कुछ देर तक सोच कर अधीर हो उठी ! वेदना की भयंकर ज्वालायें उसके हृदय को विदग्ध करने लगी। वह अपनी इस दुनियाँ को निर्ममता से छोड़ कर उसी अंधकार में एक ओर को चली गई ? कहाँ गई ? कौन जाने ? कहीं आश्रय तो है नहीं ! भिखारिणी है, दर-दर घूमती है ! चाहे जिस वृक्ष को अपना आश्रय बना ले !!

सबेरे जब मधुसूदनपुर गाँव के मनुष्यों की दृष्टि उस पेड़ के नीचे गई तो वह सूना था—पगली नहीं थी—पर पागली की मिट्टी की हाड़ियाँ अब तक उस स्थान पर उसके आभागिन होने की सूचना दे रही थीं! किसी ने कहा पगली थी भाग गई, बेचारी को खाना नहीं मिलता था! किसी ने कहा ठगिनी थी—वेश बना कर लोगों को ठगने आई थी—उस स्त्री ने कहा दुःख की मारी थी! मुँह काला करके इधर से उधर भटक रही है!! पहले तो समझते नहीं बना, अब आँखों में पाश्चात्ताप के आँसू भर कर प्रायश्चित्त करती है!!

—सात—

उसका नाम रधिया था—जाति की भंगिन थी। पर भंगिन होने के कारण समाज के अत्याचारी हाथों के द्वारा जैसी उसकी भाग्य रेखा खींची गई थी वैसा ही अपमान-पूर्ण उसका रूप तो नहीं था! आँखें बड़ी-बड़ी, रूप सलोना!! बात करती तो मानो मिश्री घुली होती! चलती तो मानो मादकता लोटती!; देखनेवाले निहारते ही रह जाते—आँखें गड़ाते तो हटाते ही न! मानो उसी में उलझ से गये हों! कहते गजब का रूप है! यदि किसी भले घर में पैदा हुई होती तो लोग उसकी आरती उता-

रते !" पर वह अपने इस सौन्दर्य पर अभिमान न करती—उसे सँवारती भी न। जैसे उसे उसमें कोई तत्व ही नहीं! वह दुःखी भी रहा करती थी—एक वेदना, एक ज्वाला उसके हृदय को मथा सी करती थी! संसार है न! संसार में कोई वेदना, से कैसे अपना पिण्ड छुड़ा सकता है?

बाहर जब निकलती तो कितने उसकी सौन्दर्य—राशि पर लट्टू हो जाते, कितने ऊँची जाति के मनुष्य भी उसके साथ मधुर सम्भाषण करने के लिये ललच उठते!! पर जब वह घर में जाती तो जैसे उसके सामने काँटों का जाल बिछ जाता—सास के व्यंग्य बौछार से आँखों के सामने अँधेरा सा छा जाता!! दिल मथ उठता—हृदय में वेदना की एक आँधी सी दौड़ जाती! सोचती क्या करूँ? भगवान! लड़का नहीं होता तो मेरा क्या दोष? यह तो भगवान की देन है। जिसके भाग्य में होता है उसे भगवान देते हैं। जिसके नहीं होता उसे कहाँ से मिलेगा? पर वह बूढ़ी औरत कब मानने लगी! उसका तो वंश डूबा जा रहा है! उसके तो एक ही लड़का है! विवाह हुये ६ वर्ष होगये, पर रधिया से एक लड़की भी न पैदा हुई! वह भला कैसे शान्त करती! उसके सौन्दर्य से ही तो कुछ उसका वंश न चलता! वह तो उससे अन्य कुरूप स्त्रियों को अधिक अच्छी समझती है जो साल दो साल में दो एक बच्चे देती

हैं। इसीलिये वह जब अवसर पाती भट भिनभिनाती हुई मक्खी की भाँति कह उठती:—न जाने कहाँ की अभागिन बन मेरे गले लगी। छः वर्ष बीत गये, एक लड़की भी न हुई। मर भी नहीं जाती कि लड़के का दूसरा विवाह तो कर डालूँ !!"

रधिया आकुल हो उठी ! मन में भगवान से मनाती कि वे जल्द उसकी फरियाद सुनें—जल्द उसकी गोद भरें ! इसी लिये वह फूल माला लेकर प्रति सोमवार को पीर की पूजा भी करने जाती। जब वह अपने केशों को खोल कर, हाथ में पूजा की सामग्री ले दरगाह की ओर जाने लगती तो ऐसा मालूम होता मानों कोई तपस्विनी हो !! उसने पहले शिव की पूजा का संकल्प किया था। पर उसे पूजने को शिव को एक बटिया भी न मिली ! जिस मंदिर पर गई, वहाँ ही से कुत्ते की भाँति दुतकार दी गई ! फिर क्या करे ? पीर की दरबार में जा पहुँची !! वहाँ तो छूत-छात का कोई भेद नहीं !! चाहे जो जाय, पूजा करे—बताशा चढ़ाये ! पीर सब की सुनते—सब के मन की मुराद पूरी करते !! रधिया भी यदि इस दरबार में जा पहुँची तो बुरा क्या ?

निर्जन स्थान में मिट्टी का एक चबूतरा बना था। पास ही एक टूटा कुआँ था ! चार छः आम-महुओं के पेड़ भी थे। पास

ही एक नाला था जो दूर तक चला गया था। आस-पास के रहने वाले कहा करते, जब रात होती तो पीर बाबा निकल कर इसी नाले के पास घूमा करते हैं। कोई-कोई पीर बाबा को साक्षात् देखने का भी दम्भ भरता! कहता उजली-उजली दाढ़ी है, सफ़ेद कुर्त्ता पाजामा पहने रहते हैं!" पर रधिया को इन बातों से क्या मतलब? वह तो अपने मन में सोचती यदि पीर सच्चे हैं तो अवश्य मेरे मन की मुराद पूरी करेंगे—अवश्य मेरी सूनी गोद भरेंगे!" इसलिये जब वह पीर बाबा की चौकी पर बड़ी गहरी लालसा और भक्ति से फूलों को बिखेर कर सिजदा पड़ती तो घंटों पड़ी रहती! अपने को भी भूल जाती! यह भी नहीं सोचती कि इस निर्जन स्थान में कोई आकर छीना झपटी करने लगे तो? पर उसे चिन्ता क्या? वह तो पीर बाबा के दर्बार में है न!!

उस दिन जब वह पीर की चौकी पर हाथ का फूल बिखेर कर सिजदा पड़ रही थी तो एक नवजात बच्चे की करुण-पुकार से उसकी समाधि भंग होगई जैसे पीर ने उसकी पुकार सुन ली हो—जैसे वह बच्चा उस एकान्त, संसार में, अपनी रुदन से किसी को सहायता के लिये पुकार रहा हो! रधिया शिर उठा कर इधर-उधर देखने लगी! बच्चा अपने रुदन से आकाश तक को गुँजा रहा था। रधिया का हृदय काँप उठा—"उसके अन्तर के पहलू-पहलू तक हिल उठे! वह खड़ी होकर देखने लगी! पर

जैसे किसी ने उसे इस विलम्ब के लिये धिक्कारा नादान! सोचती क्या है? दौड़ कर उस बच्चे को अपनी गोद में उठा ले न। पीर बाबा ने तेरी मुराद पूरी कर दी।" रधिया फिर एक क्षण के लिये न रुकी! दौड़ कर तुरन्त नाले के पास जा पहुँची! उसी ओर से तो वह आवाज आ रही थी! नाले के कगार पर खड़ी होकर उसने जो दृश्य देखा, उससे उसकी आत्मा के तार-तार हिल उठे! मुख से सहसा निकल पड़ा:—"हाय भगवान् तू भी बड़ा खिलाड़ी है! किसी की तो बच्चे के बिना गोद सूनी रहे और कोई इस तरह नाले मे फेंकता फिरे!" वह तुरन्त दौड़ कर बच्चे के पास गई और माँ की भाँति उसे अपनी गोद में उठा लिया!!

बच्चा ख़ून से तर! माँ के शरीर का रक्त भी तो अभी न सूखा था! जिस रूप में संसार में आया, उसी रूप में नाले में पड़ा हुआ अपनी कहाँ-कहाँ की आवाज से आकाश तक को गुँजा रहा था! संसार ने उसका कैसे स्वागत किया—अपने उस नये बटोही का कैसे सम्मान किया, केवल एक चीथड़े में लपेटा था!! रधिया समझ गई कोई हिन्दू जाति की अभागिन मान-मर्यादा के भय के कारण इस नवजात बच्चे को नाले में फेंक गई है! दूसरी जाति में तो ऐसे नवजात बच्चों के ऊपर ऐसी बेरहमी नहीं की जाती चाहे जो हो, रधिया का मन आशा से खिल

उठा। वह उसको गोद में उठा कर तुरन्त पीर बाबा की चौकी पर पहुँची! थोड़ी सी खाक़ उठा कर बच्चे के मस्तक पर लगा दी पर बच्चा तो चुप होता ही नहीं! उसका गला सींचने के लिये दूध चाहिये न!! रधिया चिन्तित हो उठी—उसी प्रकार जैसे बेटे को भूख से छटपटाता हुआ देख कर माँ चिन्तित हो जाती है! पर उसके स्तन में तो दूध नहीं! फिर उसका गला कैसे सींचेगी!! बेचारा न जाने कब से रो रहा है! बच्चे पैदा होते ही माँ का स्तन ढूँढ़ते हैं!! न जाने उस अभागिनी ने दूध का एक बूँद भी इसके गले में डाला था या नहीं! तो क्या यह भूख से तड़प कर मर जायगा! हाय कितना भोला है, कितना सुन्दर है!! मुखड़ा क्या है मानो दूसरा चाँद!! अभागा है न! पर पीर बाबा! क्या मेरी दूसरी फ़रियाद न सुनोगे!! रधिया सोच-कर आकुल हो उठी उसकी आँखों में आँसू भर आये—उसने लाचार होकर बच्चे को पीर बाबा की चौकी पर सुला दिया!!

ईश्वर की लीला! उसकी इच्छा के सामने असम्भव क्या? जो क्षण में सम्भव को असम्भव और असम्भव को सम्भव बनाता है, जिसने उस बच्चे की सहायता के लिये रधिया को बुलाया, यदि उसी की इच्छा से रधिया के स्तन में दूध टपकने लगे तो आश्चर्य क्या? जिसने उसे मरने से बचाया, उसे उसके भोजन की भी तो चिन्ता होनी चाहिये! रधिया का स्तन दूध से

भर गया—दो एक बूँद दूध टपक कर पीर बाबा की चौकी पर गिर पड़ा। मानो प्रकृति उनकी इस उदारता के लिये उन पर यह भेंट चढ़ा रही हो! रधिया का मन प्रसन्नता से नाच उठा। उसने माता की भाँति ललक कर बच्चे का मुख स्तन से लगा दिया !! बच्चा उछल-उछल कर रधिया का दूध इस तरह पीने लगा, मानो अपनी माँ का ही स्तन प्रेम से पी रहा हो !!"

रधिया उस बच्चे को लेकर जब अपने घर गई तो थोड़ी ही देर में उस छोटी सी बस्ती में हलचल मच गई। झुण्ड के झुण्ड आदमी आते थे, और उस बच्चे को देख कर चले जाते थे! रधिया सब के उत्सुक मन को यह कह कर शान्त कर देती थी कि यह मेरा बच्चा है। पीर बाबा ने मुझे दिया है! यदि न विश्वास हो तो देखो मेरे स्तन में दूध भी हैं। वह प्रमाण के लिये दो एक बूँद दूध भूमि पर भी टपका देती!" लोगों की उत्सुकता शान्त हो गई! लोग सचमुच यह मान गये कि पीर बाबा ने ही रधिया की मुराद पूरी की है! बस क्या था। उसी दिन से गाँव के सैकड़ों नर-नारी अपनी मुराद के लिये पीर बाबा की चौकी पर जाने लगे!! भक्ति ही तो है!! जिसका जिसके दिल में विश्वास हो जाय!! पीर बाबा ही की कृपा से रधिया की गोद भर गई! यदि रधिया बच्चे को पाती और

उसके स्तन में दूध की धार न आती तो वह बच्चे को कैसे पालती? क्या बच्चा मर न जाता! पर पीर बाबा की कृपा। गाँव वाले, यदि इस घटना से प्रभावित हो गये तो आश्चर्य क्या?

—आठ—

प्रयाग से बनारस जाने वाली बी० एन० डबल्यू० रेलवे सड़क पर राजा तालाब एक स्टेशन है ! स्टेशन से लगा हुआ एक छोटा सा क़स्बा भी है ! क़स्बे के ही नाम पर स्टेशन का नाम पड़ा है ! क़स्बे के इस नाम का एक रहस्य है ! वहाँ काशी-नरेश का बनवाया हुआ एक पक्का सुविस्तृत तालाब है ! तालाब के पास एक मन्दिर है ! मन्दिर से थोड़ी दूर हट कर स्टेशन के पास इसाइयों की बस्ती है ! बस्ती क्या ? दो एक छोटे मोटे पक्के मकान हैं ! जैसे प्रचार की कोई मिश्नरी हो ! कभी रंग-बिरंगे

देशी-इसाइयों की चहल-पहल से भर जाती है और कभी उजाड़ हो जाती है। जैसे उसमें कभी कोई रहता ही न हो ! आस-पास शीशम के पेड़ हैं ! यदि ये पेड़ न होते तो वह बस्ती बिल्कुल उजाड़ सी मालूम होती—यही मानों अपनी अधिकता से उस छोटी बस्ती को घनी बनाये रहते हैं !!

जाड़े का महीना था। प्रभात का समय, सर्दी की अधिकता से शरीर थर २ काँप रहा था। जो बाहर निकलता उसके हाथ पैर सर्दी से ठिठुर जाते—मैदान में, घासों पर बिछी हुई ओस में सन जाते !! पर वह भिखारिणी, घास की पत्तियों पर, लदी हुई छोटी-छोटी ओस की बूंदों को अपना बिस्तर बना कर शीशम के वृक्ष के नीचे अचेत होकर पड़ी थी ! शरीर से फौवारे की भाँति ख़ून की धारा छूट रही थी ! कपड़े भी ख़ून में सने थे ! आँखें धँस गई थी। साँस धीरे-धीरे चल रही थी। देखने से ऐसा ज्ञात-सा होता था, मानों अब शीघ्र ही इस असार संसार को छोड़ कर किसी दूसरे लोक में जाना चाहती है !!

वह एक बूढ़ी इसाइन थी—उसी ईसाई बस्ती के एक मकान की निवासिनी ईसा के नाम पर चलाये हुये दया-पूर्ण मज़हब की प्रचारिका ! बाल सन की भाँति श्वेत होगये थे—शरीर जुल-जुल हो चला था ! पर फिर भी वह प्रचार के नाम पर, दो चार छोटी मोटी पुस्तिका अपने झोले में डाल कर कोसों पैदल

चली जाती ! आलस्य का तो उसमें नाम तक नहीं था ! गर्मी हो या जाड़ा, सर्दी पड़ती रहे, प्रति-दिन तड़के उठ कर पूरा मील की चक्कर लगाती ! जो कोई पूँछता, उससे कहती प्रातःकाल की वायु संसार में शक्ति बाँटती है !!

उस दिन भी, पौ फट रही थी—रात अँधकार-धूमिल रूप में कुछ शेष था—अपनी चारपाई से उठकर जब वह शीशम के वृक्ष के पास पहुँची तो ख़ून में सनी हुई अचेत भिखारिणी को देख कर जैसे काँप सी उठी ! उसने समझा, ख़ून ! किसी अत्याचारी ने उसके पास की सम्पत्ति छीन कर उस पर तीव्र धार वाले अस्त्र का वार कर दिया है !! पर अनुभवी आँखें !! अधिक देर तक कैसे अज्ञानता के पर्दे में रह सकती थीं ! शीघ्र जान लिया कि मामिला कुछ दूसरा ही है !!

वह बूढ़ी ईसाइनि—सचमुच करुणा की मूर्त्ति ही थी ! ईसाई-सम्प्रदाय की गोद में पली थी न ! वह लोगों से कहा भी करती, करुणा ही इस सम्प्रदाय का विशेष अस्तित्व है ! मनुष्य हो या राक्षस, पक्षी हो या पशु, ईसा भगवान का हुक्म है सब पर करुणा करो—जिस दिन इस सम्प्रदाय से करुणा की भावना निकल जायगी, उसी दिन इस सम्प्रदाय का अस्तित्व उठ जायगा ! इसीलिये तो उसने इस भिखारी पर, जिसका नाम कभी रूपा और जिसे हिन्दू नाम के गौरवशाली सम्प्रदाय ने, राक्षस की

भाँति विवेक शून्य बनाकर अपने घर से बाहर निकाल दिया था, हृदय की सच्ची करुणा प्रगट की। उसने झट अपने घर के भीतर से कई गरम दुलाइयाँ मँगवा कर उसके ऊपर डाल दी। और कई आदमियों के साथ, उसे शीघ्र ईसाई अस्पताल में ले गई। वहाँ करुणा की मूर्त्ति प्रचारक ईसाइयों की चेष्टा से भिखारिणी अच्छी हो गई और उसका रूप स्वस्थ फिर सोने की भाँति निखर उठा!

प्रभात बेला की मन्द-मन्द वायु चल रही थीं। सूरज की सुनहली किरणें पूर्व से छिटक कर ज्योति का फुहारा सा छोड़ रही थीं। निशि की निस्तब्धता में सोये हुये, पेड़, पौधे, फूल पत्ते, मुँह खोल कर किरणों को पी से रहे थे। मानों रात भर के प्यासे हों! बूढ़ी ईसाइनि ने, उस सौन्दर्य-मयी युवती को प्यार से बुला कर अपने पास बैठा लिया। और उसके सौन्दर्य की अधिष्ठात्री ठुड्डी की मनुहार लेकर कहने लगी:—आज तुम्हें इस घर में आये हुये पूरे एक महीने हो गये। पर मैंने तुमसे यह कभी न पूँछा कि तुम कौन हो? कहाँ की रहने वाली हो और तुम्हारी यह अवस्था कैसे हुई? और तुम्हारा वह बच्चा क्या हुआ, जिसे जनकर तुम बेहोश हो गई थी? पूँछती भी कैसे? तुम तो बीमार थी—मुख से बोलने की भी शक्ति नहीं थीं! यह तो मैं जानती हूँ कि तुम उस हिन्दू समाज की ही हो जो अपनी अज्ञानता के कारण

दिनों दिन भयानक पतन की ओर अग्रसर होता जा रहा है ! ओह इस समाज के ऊपर कभी-कभी मुझे बड़ी दया आती है और कभी-कभी भयंकर रोष भी ! एक ओर इससे सुधारक सुधार की आवाज़ लगाते हैं और दूसरी ओर प्रति सप्ताह सहस्रों स्त्रियों के गले पर, समाज के द्वारा राक्षसी वार किया जाता है। दुनियाँ में जिस मान-मर्यादा के पथ पर चल कर वह अपनी रक्षा करना चाहता है, वह तो उसकी एक भ्राँति है ! उजड़ चुका—बर्बाद हो गया, पर फिर भी उसकी भ्राँति के तार नहीं टूटते !! वह बावला बनकर राष्ट्रको शक्ति का दान देने वाली स्त्रियों के ऊपर अत्याचार का घृणित वार किये ही जाता है ! दुनियाँ में, इस समाज में स्त्रियों के ऊपर जितना अत्याचार होता है, उतना कदाचित् ही किसी और समाज में होता हो ! आश्चर्य तो यह है कि इस समाज के नैतिक सिद्धान्त और आदर्श बड़े उच्च तथा व्यापक हैं ! संसार का कोई भी समाज उन सिद्धान्तों और आदर्शों को अपना कर अपने अस्तित्व को अधिक गौरवशाली बना सकता है। पर हिन्दू समाज अपनी अज्ञानता के कारण अपने अस्त्रों का उपयोग भी करना नहीं जानता। तुम्हें आश्चर्य होगा कि प्रति सप्ताह तुम्हारी भाँति सताई और अत्याचार से कुचली हुई सैकड़ों स्त्रियाँ मेरी इस मिश्नरी की सहायता लेती हैं ! हम लोग उनकी सेवा करती हैं—उनके कष्टों को दूर करती हैं और उनकी

इच्छानुसार उन्हें यथा स्थान पर पहुँचा देती हैं ! मैं भी तो उसी समाज की गोदी में प्यार से पली और अन्त में कभी तुम्हारी ही भाँति कुत्ते की तरह ठुकरा दी गई थी ! ओह ! यदि इस सम्प्रदाय ने मेरी दशा पर करुणा करके मुझे आश्रय न दिया होता तो आज इस संसार में मेरा छाया भी किसी को न दिखाई पड़ती पर यह सब पिछली बातें हैं, इन्हें जाने दो ! बताओ तुम कौन हो ? तुम्हारा बच्चा क्या हुआ !

युवती रो उठी । उसकी नस-नस में वेदना की एक लहर सी दौड़ गई । बच्चे का नाम सुन कर जैसे बच्चे की करुण आवाज़ उसके कानों में गूँजने लगी ! निष्ठुरता का एक भयानक दृश्य उसकी आँखों के सामने चित्र पट पर खिचीं हुई तस्वीर की भाँति घूमने लगा । वह रोने लगी—कपोल पर मोतियों की भाँति झलकती हुई आँसू की बूँदे भी दौड़ चलीं । वह कुछ देर तक चुप रही ! मानों कुछ सोचती हो ! पर कब तक चुप रहेगी ? माँ सरीखी बुढ़िया की बातों का कुछ उत्तर तो उसे देना ही होगा ! उसने उसे मरने से बचाया है—विपत्तियाँ बरदास्त कर जीवन दान दिया है ! यदि वह करुणा करके उसे आश्रय न देती तो क्या वह मर न जाती—उसके शव पर चील्ह कौवे न मँड़राते !! उसने कुछ देर के बाद उत्तर दिया—हाँ मैं एक अभागिनी हूँ—मेरा नाम रूपा है—विनोदपुर की रहने वाली हूँ ! हाय मेरा बच्चा ! मुझ

पर दया करो—मुझे उस भयंकर पाप से बचाओ ! मैंने उसे कपड़े में लपेट कर फेंक दिया ! हाय मेरी ज़ुबान गिर क्यों नहीं जाती ? उस अबोध बच्चे को जन-शून्य स्थान में डालकर मैं अब तक जीती क्यों रही ? "मुझे पता नहीं वह स्थान कहाँ और कितनी दूर है। रात के अंधकार में उसे फेंक कर पगली की भाँति यहाँ तक दौड़ी आई और एक स्थान में ठोकर खा कर गिर पड़ी ! फिर मुझे ज्ञात नहीं कि कहाँ, क्या हुआ ? हाँ जब जगी तो तुम्हें अपनी चारपाई के पास माता की भाँति बैठी हुई देखा बस, यही तो मेरी इस वेदना की कहानी है !"

युवती की आखों से आँसुओं की धारा बरस रही थी। बुढ़िया ने भी आन्तरिक करुणा से द्रवीभूत होकर सहानुभूति के आँसू ढुलका दिये। और फिर बड़ी ही समवेदना से उसकी आँखों को पोंछ कर उसने कहा:—बेटी है तो बड़े अनर्थ की बात !! पर आकुल होने की आवश्यकता नहीं ! बच्चा तो अब तुम्हारे हाथ आही नहीं सकता—उसे तो अपनी अज्ञानता से तुमने मृत्यु की गोद में डाल दिया ! फिर अब रोने और पश्चा-ताप करने की क्या आवश्यकता ! जिस प्रकार सैकड़ों अबोध बच्चे, इस समाज की वेदी पर बलि होते हैं उसी तरह तुम्हारा बच्चा भी बलि होगया ! शान्त करो ! यदि किसी को इस घटना का पता चल जायगा तो फिर तुम्हारे शिर पर दूसरी विपत्ति

पहाड़ की तरह टूट पड़ेगी। इसलिये अब उसकी चिन्ता छोड़ देना ही ठीक है !! पर अब तुम क्या चाहती हो ? तुम कहाँ जाना चाहती हो, क्या इस दुनियाँ में तुम्हारा कोई सगा-सम्बधी है !!

सगा सम्बधी का नाम सुन कर रूपा की आँखों में फिर वेदना चिल्ला उठी—अन्तर का कोना-कोना भयानक दुःख से भर गया। सगा सम्बन्धी !! यदि कोई होता तो उसकी यह दुर्गति ही क्यों होती ! प्रेमकुमार के पाशविक अत्याचारों के भय से वह अपने वैधव्य का चमकता हुआ अस्तित्त्व ही क्यों बर्बाद करतीं ? जिस प्रकार पहले संघर्ष के लिये कमर कसे थी, उसी प्रकार अपने मार्ग पर डटी रहती ! यदि प्रेमकुमार बलात्कार करने का दुस्साहस करते तो वह सिंघनी की भाँति झपट कर उनकी छाती पर चढ़ बैठती—किरण कुमारी की भाँति अक़बर के जिगर का ख़ून पोने लगती ! पर अभागिनी साहस हीन !! कोई सहारा नहीं, कोई सम्बल नहीं !! और फिर पाप के मरुस्थल में, यहाँ तक घसीटी जाने पर, कोई अपना सगा-सम्बन्धी ही होगा तो क्या ? हिन्दू समाज है न ! इस समाज में स्त्रियों के स्त्रित्त्व को अपहरण करने वाले पुरुषों को स्थान है, पर उन्हीं के द्वारा लुटी हुई बर्बाद की हुई स्त्रियों के लिये स्थान नहीं !! रूपा ने कुछ देर तक चुप रह कर उत्तर दिया—सगा सम्बन्धी कौन है माँ ! कोई नहीं !

यदि कोई कहीं होगा भी तो वह मुझ अभागिनी को क्यों अपनाने लगा !!

बुढ़िया को जैसे कोई सहारा सा मिल गया ! यह मन में मुसुकुरा कर कहने लगी !—मुझे कहने में संकोच तो होता है, पर यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम ईसाई बन जाओ ! इस सम्प्रदाय में तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा। और यदि तुम चाहोगी तो किसी सम्भ्रान्त ईसाई के साथ तुम्हारा विवाह भी कर दिया जायगा !

दुःख की भयानक परिस्थिति में पड़ी हुई रूपा ! बुढ़िया को इस बात का क्या उत्तर देती ? शिर झुका कर रह गई—मानो स्वीकार कर रही हो ! पर बुढ़िया ने उसे चुप देख कर फिर पूछा—मानो रूपा के इस भाव से बिल्कुल अनभिज्ञ सी हो:—तो क्या तुम्हें मेरी बात स्वीकार नहीं ! तुम ईसाई-सम्प्रदाय में नहीं रहना चाहती ! फिर बोलो, कहाँ जाना चाहती हो ? तुम्हारी इच्छा के अनुसार—मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगी !!

बुढ़िया, जैसे अपने न्याय का बोझ उसके ऊपर डाल रही हो—उसे विवशता की भयानक परिस्थिति में घसीट रही हो !! रूपा ने उसकी बातों से घबड़ा कर उत्तर दिया—कहाँ जाऊँगी माँ ! तुम जो कहोगी, वही करूँगी !”

बुढ़िया आशा से खिल सी उठी ! उसने उसी दिन उसे ईसाई सम्प्रदाय में दीक्षित कर उसका नाम बदल दिया। नाम भी रूप की भाँति बड़ा सलोना—नर्गिस !!

—— ——

—नौ—

किशोर की स्त्री रूपा का गाँव से निर्वासन ! क्यों ? उसने किसी के साथ मुँह काला कर लिया था और लगाती थी प्रेमकुमार बाबू का नाम, इसी के परिणाम स्वरूप प्रेमकुमार बाबू ने उसे बेतों से मार कर गाँव की सीमा के बाहर खदेड़ दिया, जिस दिन से यह समाचार प्रेमकुमार की स्त्री प्रतिमा के कानों में पड़ा उस दिन से प्रायः ! वह चिन्तित रहा करती ! प्रेमकुमार ने तो उसे यह समाचार न बताया। उसकी प्रकृति

जानते थे न !! सोचते, उसने सुन पाया नहीं कि प्रलय की आँधी आ जायगी ! झट गिरजा को चिट्ठी लिख कर डाकखाने में छुड़वा देगी वह भी तो मेरे इन कार्यों को घृणा की दृष्टि से देखता है ! लड़का है तो क्या ? पर कभी-भक्ति से शीस झुका कर प्रणाम भी नहीं करता । कहता है, अनाचारी पिता को शीस झुकाना पाप है—!! घृणा तो यहाँ तक करता है कि मेरे हाथ का भेजा हुआ रुपया तक नहीं लेता । कहता है, धातु के इन उजले टुकड़ों में ग़रीबों का रक्त लगा है !" पर पर्दे की ओट में रहने पर भी, प्रतिमा के कान इस भयानक समाचार से वञ्चित न रहे ! वञ्चित रही कैसे सकते थे ! सैकड़ों आँखों ने देखा था—सैकड़ों कानों ने सुना था ! प्रतिमा की उदारता की भूखी किसी स्त्री ने कह दिया होगा ! प्रेमकुमार के आचरणों को, सब आदर और सम्मान की दृष्टि से तो देखते न थे !! उनमें कुछ ऐसे भी थे, जो एकान्त में बैठ कर प्रेमकुमार को सैकड़ों गालियाँ सुनाया करते थे—तरह-तरह की आलोचना प्रत्या-लोचना से उनकी भर्त्सना युक्त निन्दा किया करते । कहते देखो न अपनी स्त्री और लड़के के ऊपर कितना अत्याचार करता है ! लड़का कितना सीधा है, कितना भोला है !! कहता है ग़रीबों को अधिक न सताओ—उनकी मान-मर्यादा को न बर्बाद करो । भला बुरा क्या कहता है ? पर इसके तो कुछ समझ ही में नहीं

आता! इसीलिये वह बेचारा, सुनते हैं, दूसरों के लड़कों को पढ़ा कर अपना जीवन निर्वाह करता और स्वयं भी पढ़ता है, पर घर नहीं आता। जब दूसरे तीसरे महीने इच्छा होती तो अपनी माँ को पत्र लिख कर उसका कुशल-मंगल पूँछ लेता है! उसकी माँ भी कितनी सीधी है, जैसे गाय। यदि किसी के ऊपर अत्याचार होते देखती है, तो झट प्रेमकुमार से लड़ बैठती है!! इसी प्रतिवाद के कारण ही तो उसने बेचारी को कोने की बपुरी बना कर छोड़ा है! स्वयं तो दोनों हाथों से, शहर बाज़ार की गलियों में, दुर्व्यसनों में रुपया ख़र्च करती है, पर वह जैसे पैसे-पैसे के लिये मुहताज सी रहा करती है!! पर कब तक उसका यह अन्याय चलेगा! एक दिन उसके सामने, इसे झुकना ही पड़ेगा—हार माननी ही होगी!! अत्याचारी है न! अत्याचारी का अत्याचार, अधिक दिनों तक दुनियाँ में नहीं स्थिर रह सकता!!"

प्रतिमा उदार थी—सहृदय थी!! यदि किसी दुःखिया को रोते बिलखते देखती तो झट उसका कलेजा आँखों में नाच उठता। स्वयं भी तो उदास रहती—चिन्ता कि भयंकर आँधी उसके हृदय में दौड़ा ही करती!! सुख या सम्पदा थी पर जैसे उसे इन वस्तुओं की परवाह ही नहीं! जैसे उसके कोमल कलेजे में प्रति क्षण एक नुकीला काँटा वेदना पहुँचाया ही करता। जब

से उसके कानों में रूपा के महापतन का समाचार पहुँचा, तब से उनकी आन्तरिक वेदना और अधिक बढ़ गई। दिन रात आँसू बहाया करती। सोचती बेचारी रूपा, असहाय विधवा !! यह इन्हीं की तो करतूत होगी—यही तो इस गाँव में महापतन के साथ क्रीड़ा करने में तेज हैं—इन्हीं की विषमयी आँखों को भोली भाली स्त्रियों का सौन्दर्य कड़ुवा प्रतीत होता है—यही उन्हें जहन्नुम में डाल कर व्यंग्य की हँसी हँसने में अपना गौरव समझते हैं—वह भोली भाली रूपा !! वह तो किसी के सामने अपना घूँघट भी नहीं हटाती थी ! अवश्य उसके ऊपर पाशविक अत्याचार किया गया होगा—उसे मायावी सिकंजों में फाँस कर उसकी मानवी दुनियाँ को बर्बाद किया गया होगा:—फिर यह विश्वासघात क्यों ? जिस तरह उसे पाप के मरुस्थल में घसीट कर लज्जाहीन बनाया, उसी भाँति स्वयं भी मुँह में पाप की कालिख लगाकर क्यों न गाँव की सीमा से बाहर निकल गये ! ओह असहाय विधवा, यहाँ से निकाली जाकर कहाँ गई हो ! क्या उसने उस पाप के पुतले के साथ अपनी भी आत्म-हत्या न कर ली होगी ! यदि नहीं तो उसे अत्याचारी संसार के भय से किसी नाले में फेंक कर अवश्य भिखारिणी की बाना पकड़ लिया होगा ! ओह ! इस भयानक पाप का परिणाम !! गाँव जल जायगा—बर्बाद हो जायगा ! गाँव का प्रत्येक बच्चा उसी

प्रकार मृत्यु की ज्वाला में तड़प कर अस्तित्व-हीन हो जायगा, जिस प्रकार उसका नवजात बच्चा भूख-प्यास की आकुलता से तड़प कर इस संसार से चल बसा होगा ! मेरा भी तो एक बच्चा है ! यद्यपि वह पिता के राक्षसी व्यवहारों से विरक्त होकर परदेश में पढ़ता है । पर कौन जाने । उसके ऊपर भी इसी भयानक पाप का परिणाम पड़े—वह भी मेरी गोद सूनी कर संसार से चल बसे—प्रतिमा अपने इन्हीं विचारों की आँधी में प्रतिक्षण उड़ा करती ! न उसे खाना अच्छा लगता और न सोना ! जैसे भयंकर वेदना की ज्वाला से जलती रहती । प्रेमकुमार से बोलती तो मानों रूठी हुई हो !! उसका रंग-ढंग देख कर प्रेमकुमार यह जानने से बाक़ी न रहे कि मेरे घर में अब प्रलय की एक आँधी आना ही चाहती है !!

प्रेमकुमार जब दिन भर के परिश्रम से थक कर सायंकाल के समय, एक किसान पर नालिश करा के कचहरी से लौटे तो धूप के कारण उनके होठों पर पपड़ियाँ पड़ गई थीं—चेहरा स्याह पड़ गया था ! आवश्यकता थी कोई सुन्दरी रमणी अपने मुलायम हाथों में ठण्डे शर्बत की गिलास और पंखा लेकर उनके सामने पहुँच जाती और प्यार से पंखा झलती हुई शर्बत की गिलास उनके ओठों पर लगा देती ! प्रतिमा तो थी न ! पर उनका हृदय तो विदग्ध था, वह उनके ओठों पर शर्बत की प्याली

लगाते-लगाते ऊब सी चुकी थी ! उसका उसे पुरस्कार ही क्या मिला ? अत्याचार और पाप के समूह को छोड़ कर कुछ नहीं ! और फिर इस समय तो वह किसी प्रतिज्ञा की जंजीर से जकड़ी हुई, एक कोने में पड़ी थी ! प्रेमकुमार बाबू ने उसे पुकारा प्रतिमा !"

पर कुछ उत्तर न मिला। सूने घर में आवाज़ गूँज कर रह गई। चीज़ें इधर-उधर बिखरी थीं—मौन दीवालें मानो अपनी निस्तब्धता से प्रेमकुमार को यह आदेश दे रही हों कि चुप रहो—घर की मालकिन रूठी हुई है। प्रेमकुमार प्रतिमा के कमरे में चले गये। प्रतिमा चद्दर में मुँह लपेट कर चारपाई पर पड़ी थी मानो कोई बँधा हुआ शव पड़ा हो। प्रेमकुमार विचलित हो गये—किसी दूसरी अशंका ने उनके परिश्रान्त मस्तिष्क को मथ सा डाला। वे झट प्रतिमा की चारपाई पर बैठ कर, उसके मुँह पर पड़ी हुई चादर को हटाने का प्रयत्न करने लगे !"

प्रतिमा तो मर नहीं गई थी—एक प्रतिज्ञा थी ! तुरन्त झिड़क कर उठ बैठी और सिंहिनी की भाँति गर्ज कर कहने लगी—हट जाइये ! आपके इन हाथों के स्पर्श से भी मेरा शरीर कलंकित हुआ जाता है ! जिसने, एक असहाय विधवा के जीवन को नष्ट कर उसे निर्दयता पूर्वक विपत्ति की भयंकर झाड़ियों में फेंक दिया, उसे मुझे प्रतिमा, कह कर बुलाने का अधिकार नहीं !

प्रतिमा, अपने घर को शमशान रूप में परिणत होते हुये अपनी आँखों से देख सकती है, पर उसकी आँखें दूसरों के घर से विपत्ति की ज्वाला निकलते हुये कभी न देख सकेगी! वह अपना सर्वस्व बलिदान करके भी उनकी रक्षा करेगी—उन्हें आग के भयंकर शोलों में जलने से बचायेगी! ओह जब मैं रूपा के उस वैधव्य जीवन का ध्यान करती हूँ, जब वह चक्की चला कर अपना पेट पालती और रात में अपने जिगर की आवाजों से सारे गाँव को गुँजित सा कर देती थी तो मेरी आँखों में आँसू छलक आते हैं। उसका वह पवित्र जीवन, उसका वह कपट रहित व्यसाय !! पर उसमें आग लगाने वाले तो आप ही हैं? उसकी बची खुची सुख की दुनियाँ में लूट-खसोट करने वाले तो ये आपके ही हाथ हैं! जिस प्रकार उसे बेंतों की मार से घायल कर अपने गाँव की सीमा के बाहर पहुँचा दिया उसी प्रकार आज मुझे भी निर्वासन का दण्ड दीजिये! मैं इस गाँव से, इस घर से शीघ्रही निकल कर भाग जाना चाहती हूँ! रूपा के हृदयके मौन अभिशाप, आँधी की भाँति प्रचण्ड बन कर इस गाँव को हड़पने के लिये जैसे दौड़े से आ रहे हैं!”

प्रतिमा कहते-कहते रो उठी! उसकी आँखों में सच्ची सहानुभूति थी—सच्ची मानवता थी! प्रेमकुमार मानवता की उस अखण्ड ज्योति को देख कर काँप उठे। पर अपराधी शीघ्र

ही अपराध को तो स्वीकार कर लेता नहीं ! वह भी भरसक अपने पापों को छिपाने की चेष्टा करता है:—जब देखता है, अब पाप स्वयं सचेत बन कर चिल्ला रहा है। तो गर्दन झुका स्वीकार कर लेता है। प्रेमकुमार ने भी अपने पापों के छिपाने की चेष्टा की। शायद विजय मिल जाय:—उन्होंने कहा:—प्रतिमा ! तुम व्यर्थ मेरे शिर पर कलंक का टीका लगा रही हो। मैंने रूपा को उसके व्यवहारों के कारण ही बेंतों से मार कर गाँव की सीमा के बाहर अवश्य पहुँचा दिया, पर उसके वैधव्य जीवन को लूटने का दोष तू मेरे शिर पर नहीं लगा सकती ! मैं इस सम्बन्ध में बिलकुल निर्दोष हूँ !!"

"निर्दोष :—प्रतिमा गरज कर बोल उठी—आप और निर्दोष !! कौन कहे और कौन सुने !! आपके अतिरिक्त इस गाँव के किसी भी मनुष्य में रूपा के मानवी अस्तित्व को लूटने की शक्ति नहीं है ! आप जिस प्रकार शक्ति के मद में बावले बन कर ग़रीब किसानों का ख़ून पान करने में नहीं संकोच करते, उसी प्रकार आपके ये हाथ उस अभागिनी विधवा के ऊपर व्यभिचार का गर्हित वार करते—हुये न हिचकिचायें होंगे !! आपने एक पाप करके जिस प्रकार अपने प्रथम पाप को छिपाने के लिये उस अबला के मुँह में विवशता के लत्ते ठूँस दिये, उसे देख कर मानवता भी काँप उठती है—प्रकृति की प्रकृतिता भी अचेत सी

होजाती है! आप अपने पापों को छिपाने की चाहे जितनी चेष्टा करें! पर एक दिन वह दुनियाँ में प्रगट होकर के ही रहेगा !!"

प्रेमकुमार की आत्मा पहले ही सन्देह के झूले पर झूल रही थी। रूपा को उन्होंने राक्षस की भाँति पीट कर गाँव के बाहर तो निकाल दिया पर उसकी निर्दोषिता उनके हृदय को आरे की भाँति चीरती थीं। वे उसे भूल जाने की चेष्टा करते पर उसके दयनीय जीवन का एक दर्द भरा चित्र उनकी आँखों के सामने आ ही जाता! पाप है न! शीघ्र मनुष्य का पिण्ड नहीं छोड़ता—सिर पर! चढ़कर बोलता है! प्रेमकुमार कभी-कभी अपने पाप से भयभीत हो उठते थे! इसीलिये प्रतिमा की मानवी बातों ने बहुत जल्द उन्हें कस कर बाँध लिया। प्रेमकुमार अब कुछ उत्तर न दे सके। स्त्री के स्त्रित्व के सामने अत्याचार की शक्ति से उठा हुआ गर्दन झुक गया। उन्होंने ठीक उसी स्वर में जिसमें अपराधी अपने अपराध को स्वीकार करता है, कहा, प्रतिमा! मेरी प्रतिमा!! क्षमा करो! मैंने ही उस अबला का जीवन नष्ट किया है—मैंने ही बल पूर्वक उसे अपमान के जलते हुये मरुस्थल में घसीटने का घृणित पाप किया है!! मेरा हृदय वेदना से मथ रहा है—नस-नस में उसके अभिशाप की आग, भयंकर ज्वाला उगलती हुई सी जान पड़ती है! पर क्या करूँ? कहाँ उसका

पता लगाऊँ ? वह अवश्य नदी या नालों में गिर कर अपने उस अपमानपूर्ण जीवन का अन्त कर डाले होगी ? यदि उसका वह निर्दोष जीवन, एक बार फिर इन आँखों से देख पाता, तो उस अबला के चरणों पर गिर कर हृदय में दहकती हुई ज्वाला को शान्त तो करता !''

प्रेमकुमार बच्चे की भाँति रोने लगे। उनका सारा अत्याचार उनकी सारी राक्षसी शक्ति एक साथ ही पाप के इस बवण्डर में विलीन हो गई। मानों उनके हाँथों के द्वारा पला हुआ भीषण पाप राक्षस की भाँति मुँह फैला कर उन्हें निगल जाने की चेष्टा कर रहा हो और वे प्रतिमा की ओर करुणा भरी निगाहों से देखकर उससे बचाने की प्रार्थना करते हों ! प्रतिमा की भी प्रतिज्ञा भंग सी हो गई ! प्रेमकुमार अत्याचारी हैं पर हैं तो पति उसके जीवन के आराध्य देव ! उसने उनकी आँख के आँसुओं को पोंछ कर कहा—पर इस भयानक पाप का आपको प्रायश्चित करना होगा ! संसार आपके इस पाप को भले ही न जानें, पर प्रकृति का अणु-अणु इससे व्याप्त सा हो उठा भगवान की सत्ता का गुणानुवाद करने वाला आकाश और पृथ्वी, दोनों ने अपनी आँखों से आप के इस पाप नर्तन को देख लिया है !''

"प्रायश्चित मैं करने के लिये तैयार हूँ प्रतिमा ! प्रेमकुमार ने उत्तर दिया—बताओ मुझे कैसे प्रायश्चित करना होगा—पाप

को इस भयंकर कालिमा को धोने के लिये क्या करना होगा !"

प्रतिमा मानों धर्म की दीक्षा देने वाली हो। गम्भीर बनकर उत्तर दिया—पाप की इस वेदी पर अपने सम्पूर्ण अत्याचारों और हृदय में छिपे हुए कलुषित-कारनामों कि बलि देनी होगी—"मनुष्य की भाँति दीन दुखियों से व्यवहार करना होगा। और परदेश में पड़े हुये बालक गिरजा से क्षमा माँग कर उसकी आत्मा को संतुष्ट करना होगा !"

प्रेमकुमार भगवान की शपथ खा कर उसी क्षण इन सब बातों के लिये तैयार होगये ! प्रतिमा अपनी विजय पर इतना प्रसन्न हुई, मानों उसे स्वर्ग का राज्य मिल गया हो !!

—दस—

वह लड़का था। उम्र सत्तरह अठारह की रही होगी। नाम था गिरजा! बनारस के किसी कालेज में पढ़ता था। पर कालेज के अन्यान्य छात्रों की तरह न था! साधारण चाल से रहता—ग़रीबों से प्रेम करता और सेवा समितियों में भाग भी लिया करता। जहाँ कहीं किसी ग़रीब भिखारी को किसी रोग से तड़पता, चिल्लाता देख पाता झट उसकी सेवा-सुश्रूषा करने लगता! किसी के दुःख से दुःखी तो इतना होता, मानों उसके ही ऊपर

बीत रही हो !! कालेज के लड़के और शिक्षक उसकी बड़ी प्रतिष्ठा करते ! शहर के परिचित निवासी भी तो उसका सम्मान करते ! पर उसे अभिमान छू तक नहीं गया था !

घर उसका एक गाँव में था—विनोदपुर से शहर चालीस मील दूर ! घर वह अधिक न जाता—महीने में एक बार चला जाता ! न जाने क्यों मुख पर घर का नाम आते ही उसके हृदय में वेदना सी दौड़ जाती—मुख पर एक उदासी सी झलक जाती !! पत्र भी तो अधिक नहीं लिखता—दो एक महीने में अपनी माँ को लिख कर कुशल समाचार मँगा लिया करता !!

अभी उसे बनारस के कालेज में पढ़ते हुये थोड़े ही दिन हुये थे कि उसके जीवन में एक विचित्र घटना सी घट गई—इसी घटना ने उसे अधिक बिरक्त भी बना दिया। जाड़े का समय था ! आठ बज चुके रहे होंगे। गिरजा अपने जन-शून्य कमरे में किसी पुस्तक की ओर ध्यान लगाये हुये बैठा था। इसी समय उसके कानों में आवाज़ पड़ी—गिरजा !!

गिरिजा ने कुर्सी पर बैठे ही बैठे पीछे फिर कर देखा—रमेश ! रमेश उसका मित्र था। प्रकृति का कटु और स्पष्ट वादी था। किसी से बात करता तो दिल खोल कर करता !! अच्छी हो या बुरी बात, पर उसे प्रत्यक्ष रूप से प्रगट करने में न हिचकिचाता ! गिरिजा उसकी प्रकृति को जानता था—उससे स्नेह

भी करता था। गिरिजा की आँखें उसी रमेश की आकृति पर लगी ही थीं कि उसने अपने हाथ का हिन्दी दैनिक पत्र उसके टेबुल पर रख दिया और उँगली से एक कलम की ओर संकेत करते हुये, कहा—ज़रा इसे आँखे खोल कर पढ़ो तो! तुम तो दुखियों से प्रेम करते हो। पर तुम्हारे ही घर में उनकी छाती पर कैसा राक्षसी काँड किया जाता है ओह! इन लाइनों को पढ़ कर एक बार आत्मा तक सिहर उठती है!!

रमेश एक साँस में ही कह गया! मानों उसकी आँखों में रोष हो—वह गिरिजा के ऊपर कुछ क्रोध सा प्रगट कर रहा हो!! गिरिजा की आत्मा काँप उठी! रमेश कभी असत्य तो बोलता नहीं—फिर क्या मेरे घर या गाँव में कोई राक्षसी काँड!! झट उसकी आँखे उसके संकेतानुसार उधर जा पड़ीं! वह उस पत्र के एक सम्बाद दाता का पत्र था—उसमें लिखा था—विनोदपुर में रूपा नाम की एक विधवा स्त्री का निर्वासन। उसने अपने निर्वासन के समय, जो कुछ कहा है, उससे यही पता चलता है कि उस गाँव के जमीदार बाबू प्रेमकुमार ने पहिले तो उसे अपनी राक्षसी शक्तियों के द्वारा अपमान पूर्ण परिस्थिति में निर्दयता-पूर्वक घसीटा और अंत में समाज के क्षोभ से डर कर, राक्षस की भाँति विवेक शून्य हो उसे बेतों से मार कर गाँव की सीमा के बाहर खदेड़ दिया। वह निस्सहाय अबला हिन्दू अमाज

की टूटी हुई झोपड़ी को जलाने के लिये, इस समय न जाने कहाँ, अभिशाप की ज्वाला फूँकती होगी। इसी घटना के आधार पर सम्पदाक की ओर से एक टिप्पणी भी लिखी गई थी—जिसके अक्षर-अक्षर से समाज के इन काले कार-नामों के प्रति, भयंकर अग्नि की चिनगारियाँ सी निकल रही थीं! रमेश ने संकेत करके उसे भी गिरिजा को पढ़ने के लिये कहा! गिरिजा उस सम्वाद और सम्पादक की ओर से लिखी हुई टिप्पणी को पढ़कर काँप सा उठा—उसके अन्तर के पहलू-पहलू से रोष की चिनगारियाँ सी छिटकने लगी! बेचारे के मुख से सहसा निकल पड़ा—ओह! समाज की नींव को अपने राक्षसी पापों से गिराने वाले ऐसे अत्याचारी मनुष्यों का नाश हो—उनका अस्तित्व, जितना ही शीघ्र इस संसार से मिट जाय उतना ही अच्छा!!

गिरजा हृदय में उठे हुये असन्तोष के वेग में कुछ और कहना चाहता था कि बीच में रमेश ने उसे रोक कर कहा—गिरजा क्या कहते हो—अभिशाप की ज्वाला में सनी हुई अन्तर की यह आवाज़ा क्यों निकालते हो? क्या यह तुम जानते नहीं कि तुम्हारी यह अभिशाप की ज्वाला किसी दूसरी ओर न जाकर तुम्हारे घर ही की ओर जायगी!! क्योंकि इस अमानुषिक काण्ड के करने वाले तो तुम्हारे पिता ही हैं!!

बस करो रमेश-गिरजा ने उत्तर दिया—अब हृदय को अधिक न विदग्ध करो—अन्तर के कोने-कोने में तो जैसे आग की लपटें उधम मचाई ही रही हैं—तुम भी इन बातों की आहुति डाल कर अब उसके भड़कने में अधिक सहायता न दो ! मेरा पिता और यह राक्षसी काण्ड, हरगिज़ नहीं ! दोनों बातें पूर्व पश्चिम की भाँति एक दूसरे के प्रतिकूल हैं रमेश !! तुम्हें मालूम नहीं कि मैंने बहुत पहले से ही अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है—राक्षसी काण्डों से ऊब कर अपनी जन्म-भूमि को परित्याग सा कर दिया है !! पर यह एक पाप की ऐसी ज्वाला है, जो मुझे यहाँ भी सुख से न रहने देगी मुझे इस भयंकर पाप के लिये—कोई प्रायश्चित्त करना होगा—अत्याचार की इस कौटु-म्बिक प्रथा को बर्बाद करने के लिये अपने को बर्बाद करना होगा !!

"तुम कैसे प्रायश्चित्त करोगे गिरजा—रमेश ने कहा—अपने को सँभालो, मैं देखता हूँ तुम्हारा मस्तिष्क विकृति होता जा रहा है तुम अपने इस संसार को छोड़ कर दूसरे संसार की ओर बहे जा रहे हो !! तुम्हारी अवस्था इतनी कोमल और तुम्हारे बिचारों में क्रान्ति का ऐसा उत्कठ वेग ! रोको अपने इस वेग को नहीं तो जीवन के भयानक मरुस्थल में गिर कर अस्तित्व-हीन हो जाओगे !!

"बहुत ठीक कहते हो मेरे भाई :—गिरजा ने उत्तर दिया तुम मानव प्रकृति के इतिहास का रहस्य जानने में बड़े निपुण ज्ञात होते हो। मैं सचमुच इस संसार को छोड़ कर दूसरे संसार की ओर दौड़ा जा रहा हूँ! पर कोई इच्छा कोई आँधी मुझे जबर्दस्ती घसीट कर उस ओर नहीं ले जा रही है—मैं चेतना शून्य मनुष्यों की भाँति लोह शृंखलाओं में जकड़ा हुआ, इस ओर नहीं घसीटा जा रहा हूँ! मैं जा रहा हूँ! अपनी इच्छा से। मेरी इच्छा पर मेरा अपना प्रभुत्त्व है!! जिस संसार में निःशक्त स्त्रियों और बच्चों के गले पर अत्याचार की छुरी चलाई जाय, जिसमें दिन दहाड़े मानवता की छाती पर अमानुषिकता का नर्त्तन किया जाय, उस समाज या संसार में न रहना ही अच्छा! और प्रायश्चित्त। यह मैं अभी तुम्हें क्या बताऊँ? यदि तुम्हारी आँखों में प्रकाश होगा तो तुम उसे स्वयं देख लोगे—स्वयं मेरे प्रायश्चित्त के इतिहास का अध्याय, पढ़ लोगे!"

रमेश ने, अब इस बात को अधिक विस्तृत रूप देना न चाहा। उसने समझा, गिरजा का हृदय प्रेमकुमार के इस भयानक काण्ड से वास्तव में घृणा करता है, वह उठ कर चला गया। गिरजा सोचने लगा—संसार कितना निष्ठुर है—कितना अत्याचारी है!! जिसके शरीर में शक्ति है, जिसके हाथों में प्रभुत्व की थोड़ी सी भी बागडोर है, वह निःशक्तों और अधि-

कार वन्चित मनुष्यों की छाती पर अमानुषिकता का अभिनय करने में तनिक भी संकोच नहीं करता ! पर शक्ति का तो यह रहस्य नहीं !! शक्ति से तो संसार के नैतिक नियमों का विकाश होता है, न कि विनाश। किन्तु आज का संसार बदल गया है—उसके साथ ही साथ शक्ति के सिद्धान्त नियमों का उपयोग भी, घृणित मनोवृत्ति के साथ किया जा रहा है ! यही कारण है, समाज जर्जर हो चला है, राष्ट्र बुभुक्षित की नाईं अपनी ही वास्तविक सम्पत्ति को अपने जलते हुये उदर में रख रहा है ! अबलायें सताई जा रही हैं, नवजात बच्चों को जीते ही क़फ़न से ढाँका जा रहा है। फिर इसका परिणाम ? क्या बुभुक्षा की ज्वाला न बढ़गी—क्या असन्तोष की चिनगारियों से आकाश का शून्य मण्डल लाल न हो उठेगा ? ऐसे समाज के इस घृणित प्रतिरूप को इन प्रकाश वाली आँखों से देखना पाप है—अन्याय है !! इसलिये सब से पहिले, समाज के इस घृणित प्रतिरूप को जिसमें हिंसा, दम्भ और प्रवन्चकता की भावनायें भरी हुई हैं, आँखों के सामने से हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। यही तो मेरा सुन्दर प्रायश्चित्त भी होगा !"

गिरजा का हृदय ! इस महान् प्रतिज्ञा के विकाश से झलक सा उठा ! वह प्रवन्चिका ममता से विरक्त तो ऐसा बन गया, मानो पूर्ण सन्यासी हो ! उस दिन पढ़ने भी न गया। दिन भर

विचारों के उलझन में पड़ा रहा। पर संसार उसे अपनी ओर न खींच सका। वह सताई हुई रूपा का पता लगाने के लिये तैयार होगया—हिन्दू समाज के पाप की उस झोंपडी में जिसके तले स्त्रियों के स्त्रित्व का संहार किया जाता है बच्चों को विष की घूटी दी जाती है, आग लगाने के लिये कमर कस ली! और फिर रात के निर्जन काल में जब सब लोग सो रहे थे, वह अपने सजे सजाये कमरे को निर्ममता पूर्वक छोड़ कर ज्योति की खोज में अन्धकार में मिल गया! कहाँ गया, यह कौन जानें?

प्रातःकाल होने पर जब रमेश गिरजा के कमरे में गया, तो वह खुला हुआ था—वस्तुयें यथा स्थान पर पड़ी हुई थीं! पर गिरजा नहीं था! रमेश ने सोचा, वह कहीं बाहर गया होगा—आता ही होगा! कुर्सी पर बैठ कर टेबुल पर रक्खे हुये कागजों को उलटने लगा! पर यह मेरे नाम का लिफ़ाफा कैसा—हस्त-लिपि तो गिरजा की सी जान पड़ती है। रमेश की आत्मा काँप उठी। उसने काँपते हुये हाथों से लिफ़ाफा खोला। उसमें लिखा था:—

भाई रमेश!

कल तुमसे जिस प्रायश्चित्त की बात चली थी, उसी के लिये आज इस रात के अन्धकार में मैं सन्यासी का बाना ले रहा हूँ। तुम देखोगे कि थोड़े दिनों में जब मैं कभी तुम्हारे सामने आऊँगा

तो मेरे साथ ही साथ तुम्हें समाज का यह काला प्रतिरूप भी शुभ्र दिखाई देगा ! बस !

तुम्हारा

गिरजा

थोड़ी ही देर में होस्टल में आँधी की भाँति वह समाचार गूँज उठा कि गिरजा, अपने पिता के राक्षसी काण्डों का प्रायश्चित्त करने के लिये सन्यासी होगया, जिस समय यह सम्वाद, उस होस्टल के प्रत्येक लड़के के मुख से निकल कर चारों ओर गूँज रहा था, उसी समय प्रेमकुमार बाबू गिरजा का पता लगाते हुये उसके छात्रावास में पहुँचे। प्रतिमा ने उन्हें गिरजा को बुलाने के लिये भेजा था ! वह प्रेमकुमार के व्यवहारों से आकुल हो घर से विरक्त होगया था न !! पर गिरजा उन्हें न मिला। रमेश ने उसका पत्र दिखलाते हुये उनसे कहा—आपही के पाप तो उस युवक को सन्यासी प्रवृत्ति की ओर घसीट ले गये ! जब वह इस समाज से विरक्त होकर घर के बाहर हो गया, तब आप उसका सम्मान करने चले हैं !'

प्रेमकुमार का हृदय मथ सा उठा। उनकी आँखों के आगे अन्धकार की एक गहरी छाया सी दौड़ चली। पर उस अंधकार में भी यदि उनकी आँखों को छाया चित्र की भाँति पाप का प्रतिफल दिखाई पड़ा हो तो आश्चर्य क्या ?

—ग्यारह—

उसके जीवन में एक असन्तोष था—मिट गया—एक वेदना की आँधी थी—समाप्त हो गई। वह जब प्रसन्न रहती—मानों उसके हृदय में कोई चिन्ता ही नहीं! जो कुछ थी वह उसी दिन पानी के बुलबुले की भाँति नष्ट हो गई, जब पीर बाबा ने प्रसन्न होकर उसकी गोद में चाँद का एक टुकड़ा डाल दिया था। वह उसी का मुख निहारा करती—उसके भोले मुख की दिन में हज़ार-हज़ार बलैया लिया करती! जो कोई उससे कहता—रधिया! तू इस बच्चे को क्यों इतना प्यार करती है। यह तो दूसरे का

हैं न !" वह झट उसका जवाब देकर मुँह तोड़ देती:—दूसरे का कैसे मेरा है ! पीर बाबा ने मुझे दिया है ! मैं इसकी माँ हूँ और यह मेरे जिगर का लाल है !!

उसका उसने कुमार नाम रक्खा था। पर लड़के उसे कुमार के नाम से बुलाया करते ! जब वह अन्य अछूत बालकों में मिल कर खेलने लगता तो ऐसा मालूम होता मानों रात की तम राशि में खद्योत !! भोला-भाला मुखड़ा, चमकती कान्ति सुगठित शरीर देखते ही बनता। आँखें निहार कर तृप्त हो जातीं। लोग कहते हैं किसी भले आदमी का लड़का, बदक़िस्मती के कारण भँगिन के हाथ पड़ गया है। पर रधिया का रूप भी तो वैसा ही था जो दोनों को एक साथ देखता, उसे यह जानने में देर न लगती कि यह सौन्दर्य की जग-मगाती हुई किरण इसी ज्योति—पुँज से छिटक कर निकली है !!

रधिया चाहती उसका कुमार किसी बुरे काम में न लगे ! उसका सोने का सा शरीर तो भंगी व्यवसाय में मिट्टी सा हो जायगा ! फिर वह पढ़ना-लिखना सीखे ! पर उसे पढ़ायेगा कौन ? उसे तो छूना तक लोग पाप समझते हैं ! देखते हैं तो दूर खिसक जाते हैं !' रधिया का हृदय इसी चिन्ता से प्राय: दु:खी रहा करता था। वह कभी-कभी अपनी जाति की इस दयनीय परिस्थिति पर मन ही मन बड़ी दु:खी होती। कहती :—संसार में क्या ईश्वर की सत्ता नहीं ! इसी से तो हम लोग

मनुष्य होकर के भी अछूत समझे जाते हैं ? आखिर इस अछूतपन का रहस्य क्या है ? क्या भगवान् ने अपने हाथों से सृष्टि इतिहास में मेरे नाम के आगे पीछे अछूत शब्द जोड़ दिया है ! पर नहीं भगवान् का महान् अस्तित्व व्यापक है, विशाल है, उसे संसार की इन संकीर्ण भावनाओं से मतलब क्या ? यह तो संसार के उन स्वार्थ लोलुपों की राक्षसी लीला है जो निःशक्तों को अपने चंगुलों में सदैव फाँसे रहना चाहते हैं। उनसे उनका काम चलता है न—वे अपना रक्त सुखाने में अभ्यस्त होते हैं न !! एक ओर वे मनुष्य जो दिन-रात अत्याचार और हिंसा की भावना में परिलिप्त से रहते हैं, सुख का जीवन बिताते हैं और दूसरी ओर हमारी जाति के लोग दिन-रात मानव जगत् की महत्वपूर्ण सेवा का भार अपने कन्धे पर उठा कर के चिन्ता की ज्वाला में जलते रहते हैं हम लोगों को पहिले ही से ऐसा निःशक्त और पंगुल बना दिया है जिससे हम शिर उठा कर उनका बिरोध न कर सकें ! और यदि करें तो वे अपनी इच्छानुसार मुझे भूख की भयंकर ज्वाला में जला कर मार डालें ! ओह कितनी बिवशता है, कैसी लाचारी है !! न हम लोगों के बच्चों को रहने का ठिकाना और न उनके खाने-पीने तथा पढ़ने का प्रबन्ध !! दिन-रात भूख-प्यास की यन्त्रणा में छटपटाते रहते हैं ! पर फिर भी सेवा में लगे रहते हैं !”

रधिया चिन्ता तो करती, पर उसकी चिन्ता का कोई उपाय नहीं था ! मन मसोस कर रह जाती ! समाज का अस्त्र है न—उसकी तीव्र धार के सामने ग़रीबों को शिर झुकाना ही पड़ता है !! सत्वाधिकारी तो है नहीं कि उसका संगठित रूप में सामना करें ! रधिया विवशता के बवण्डर में नाच कर रह जाती—यदि उसका चलता, यदि उसमें शक्ति होती तो वह एक ही क्षण में समाज के इस अस्त्र को उठा कर समुन्द्र में फेंक देती !! पर वश की तो बात नहीं थी !!

उसका कुमार ! वह भी तो ग़ज़ब का लड़का था। कोई जब उससे घृणा करता, उसकी छाया से दूर भागता तो वह उसे बड़ी आश्चर्यमयी दृष्टि से देख कर कहता—क्या हम आदमी नहीं हैं ! दूर क्यों भागते हो ?' पर लोग उसे दुतकारा करते। वह मनमसोस कर रह जाता ! इस अछूतपन का रहस्य वह क्या जानें बालक था न !!

उन दिनों स्वतन्त्रता की आँधी चल रही थी ! गाँव-गाँव में स्वयंसेवकों के लिये सभायें की जा रही थीं। जिसी को देखिये, वही स्वयंसेवकों की श्रेणी में नाम लिखाने के लिये लालायित सा रहता था—बच्चे बूढ़े सभी की नसों में उत्तेजना की एक लहर सी दौड़ रही थी ! फिर रधिया का बेटा कुमार इस लहर से कैसे वञ्चित रहता ? उसके क़स्बे में जब सभा की

डुग्गी पीटी गई तो वह सबसे पहिले ही उस स्थान पर जा पहुंचा। पर दुतकार दिया गया—अछूत समझ कर दूर खदेड़ दिया गया! किन्तु प्रेम! न हटा, दूर पर खड़ा हो उसी ओर आँखे लगाये था! मानों प्यासा हो—किसी से कुछ कहना चाहता हो? पर उसकी सुनता ही है कौन!! सुने या न सुने, इसकी उसे चिन्ता नहीं!! पर वह स्वयंसेवकों में अपना नाम तो अवश्य लिखायेगा! बेचारे को क्या मालूम, जेल जाना पड़ेगा—जेल में मुसीबतें झेलनी पड़ेंगी!! सोचता है, मीठे शर्बत की प्याली है, गाँधी बाबा सबको पिलाते हैं हम भी पीयेंगे! तो ठीक ही है, देश-प्रेम का प्याला, कब किस शर्बत से कम मीठा होता है!!

ज्यों ही सभापति ने लोगों से नाम लिखने के लिये अपील की त्यों ही वह बिजली की भाँति दौड़ कर सभापति के पास जा पहुंचा और कहने लगा—मेरा नाम लिख लीजिये! " उसकी बात पूरी न होने पाई थी कि सभा में एक आँधी सी आ गई लोग अपने-अपने शरीर का वस्त्र झाड़ पोंछ कर अलग खिसक गये। मानों पुलिस का कोई बड़ा अफ़सर आ पड़ा हो!! कुमार इस दृश्य को देख कर दंग रह गया। किसी ने कहा मारो बेवकूफ़ को, सब को रसातल में भेज दिया। सभापति ने कहा—जाने दो लड़का है! कान पकड़ बाहर निकाल दो! " पर

उसका कान कौन पकड़े—कौन जीते ही नरकीय दृश्यों का अवलोकन करे !! यह है हिन्दू-समाज और यह है उसकी व्यापक भावना !! कुमार को इसका रहस्य ही कुछ न जान पड़ा। वह वहाँ से बुरी तरह डाँट खाकर रोता हुआ रधिया के पास दौड़ गया और उसके अंचल का कोना पकड़ कर कहने लगा—मां ! मुझे देख कर लोग क्यों दूर भागते हैं ? क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ ! "रधिया का हृदय पीड़ा से मथ उठा, आँखों में विवशता के आँसू झलक आये ! उसने कुमार का आँसू पोंछते हुये कहा—हाँ बेटा। हम लोग मनुष्य नहीं, इस संसार में मनुष्य रूप में पशु हैं ! पर रधिया की बात, कुमार की समझ में कुछ भी न आई ! वह उसी प्रकार रोता और ठुनकता रहा बच्चा था न ! अछूत पन के इस रहस्य को जान ही क्या सकता था !!

—बारह—

वह एक छोटा सा कमरा था। साफ़ सुथरा था—आँखें उसकी सुन्दर सजावट पर चमक जाती थीं। ऐसा ज्ञात होता मानों कमरे की निवासिनी का रूप ही उस सजावट में चमक रहा हो! जैसे सौन्दर्य की देवी!! भोला भाला मुखड़ा, बड़ी बड़ी आँखें, जो देखता, वह बिना कुछ सोच-विचार किये ही उस पर अपने को बलिहार जाता! उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखना भी तो पाप होता!! भगवान की कला का उत्तम पुरस्कार

फिर क्यों न लोग उसकी ओर आखों में प्यास की भावना भर कर देखते !!

कमरे में ईसा भगवान का एक बड़ा चित्र टँगा हुआ था। सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा उस चित्र के सामने आसन बिछा कर उसी पर घुटने टेक कर पड़ी थी ! मानों उस चित्र से मन ही मन करुणा की भीख माँग रही हो—उसे अपनी विवशता का राग सुना रही हो ! वह कब तक इसी भाँति पड़ी रहती, यह कौन जाने पर सहसा किसी पद-ध्वनि से उसकी अराधना भंग हो गई ! उसने शिर ऊपर उठा कर देखा-यूसेस !

यूसेस बुढ़िया ईसाइनि का लड़का, मतवाला युवक था। आँखों में प्रेम की वासना थी, हृदय में आँधी ! जिस दिन से भोली-भाली नर्गिस का रूप उसकी आँखों में समा गया, उसी दिन से वह प्रायः बेचैन रहा करता ! वह कहता नर्गिस ! तू मुझसे विवाह करले, पर नर्गिस कहती, मैं अपना विवाह करूँगी ही नहीं ! बुढ़िया की भी तो इच्छा थी ! वह भी कभी-कभी अपने मन में सोचती रूप है, योवन है, पढ़ लिख कर सुशिक्षिता बन गई है, तो क्या इसी भाँति व्यर्थ ? उसके इस जीवन से ईसाई सम्प्रदाय को कुछ लाभ न पहुँचेगा ! वह कहती है विवाह न करूँगी, पर यहाँ कोई आश्रम तो है नहीं कि वह ब्रह्मचारिणी बन कर ईश्वराधन में अपना जीवन

व्यतीत करेगी ! यह तो मिशन है—मिशन के प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य उसकी संख्या में वृद्धि करना है !!

अतएव बुढ़िया भी कभी-कभी उससे व्याह के लिये आग्रह करती—उसे समझाती और अनेकों प्रकार के प्रलोभन का जाल फेंकती ! पर वह जाल में आती ही न—उसकी आँखें मृग तृष्णा के भँवर में पड़ती ही न ! धोखा खा चुकी थी नः—एक बार आँखें संसार के रूप को पहिचान चुकी थी नः—स्पष्ट उत्तर दे देती—मैं विवाह न करूँगी मुझे न सताओ ! पर संसार का कोई सम्प्रदाय इतना उदार तो नहीं कि किसी निःस्सहाय भिखारी और हाथ पाँव हीन मनुष्य को अपनी गोद में पाले !! जहाँ हिन्दू समाज में स्त्रियाँ सताई जाती हैं, वहाँ ईसाई सम्प्रदाय में भी, उनके गले पर स्वार्थ की छुरी चलाई जाती है ! फिर बुढ़िया कैसे नर्गिस का पिण्ड छोड़ देती ! वह तो ऐसी भोली-भाली स्त्रियों को अपने चंगुल में फँसाने के लिये गाँव-गाँव चक्कर लगाया करती है। धूप में भी जाती है और बरसात में भी ! फिर चंगुल में, चिड़िया की भाँति फँसी हुई सौन्दर्य की किरण नर्गिस की इस बात को कैसे मान लेती ! और उधर उसकी बूढ़ी आँखों के प्रकाश, यूसेस का उसकी ओर झुकाव भी तो है ! कई बार मुँह खोल कर स्पष्ट रूप से कह भी चुका है—नर्गिस, यदि मुझे न मिलेगी तो फिर मैं आत्म-हत्या कर लूँगा !"

फिर भला बुढ़िया अपने षणयन्त्रों से कैसे बाज आती। यूसेस भी तो क्रूर चक्र में लगा हुआ था? दोनों के इस स्वार्थ पूर्ण षणयन्त्र से, नर्गिस यदि स्वार्थ के सकिन्जों में फँस जाय तो आश्चर्य क्या?

यूसेस को अपनी आँखो के सामने देख कर जैसे नर्गिस का माथा ठनक उठा—उसने आँखों में रुखाई का भाव भर कर कहा—यूसेस! क्यों तुम मेरे पीछे पड़े हो! मैं तुमसे अनेकों बार कह चुकी कि मैं विवाह न करूँगी!!

"क्यों विवाह न करोगी—इसी समय बुढ़िया ने वहाँ पहुँच कर कहा—मानों यूसेस को उसने ही वहाँ भेजा हो और स्वयं छिप कर नर्गिस की बातें सुन रही हो—विवाह न करने पर तो तुम उसी प्रकार यहाँ से दुतकार दी जाओगी जिस प्रकार पहिले कभी किसी के द्वार पर से दुतकार दी गई थी! यह संसार है! संसार की मनोवृत्ति में स्वार्थ साधन का अपूर्व रहस्य छिपा हुआ है। क्या तुम इसे नहीं जानती? मैंने तुम्हें अपनी यहाँ जब आश्रय दिया था। तो यह समझ कर कि तुम से मेरे सम्प्रदाय का दीपक प्रकाशित होगा।"

नर्गिस ने शिर उठा कर बुढ़िया की ओर देखा। उसकी आँखों में आश्चर्य का सागर लहरा रहा था—कोने-कोने में एक भोली-भाली करुणा नाच रही थीं! वह वही बुढ़िया है न,

जिसने दिन-रात जाग-जाग कर रूपा की सेवा की थी—जिसने उसके भयानक कष्टों को देख कर आँखों में सहानुभूति के आँसू भर कर कहा था—हिन्दू समाज नाश हो ! फिर आज यह क्या ? यहाँ भी पर्दे के भीतर अमानुषिकता का नाच ? यहाँ भी उसी पाप पूर्ण स्वार्थ का भयानक अभिनय !। यदि वह उसकी बात न माने तो क्या वह सचमुच निकाल दी जायगी, क्या सचमुच दोनों उसकी छाती पर बैठ कर उसका ख़ून पान करने लगेंगे !! पर वह विवाह क्यों करे ? विवाह तो उसका होचुका था, किशोर के साथ !! अब तो वह विधवा है—किशोर के अनुशरण में ही अपना जीवन बिता देना चाहती है !! ईसाई हो गई है तो क्या ? उसके हृदय में पति का प्रेम तो है !! वह चाहे जिस लोक में रहे, पर उसे न छोड़ेगी—अपने व्रत से न विचलित होगी ! कोई राक्षस, अपनी शक्तियों के बल पर चाहे उसका सतित्व चौपट कर दे पर उसका मन तो पवित्र है—वह हृदय में, किशोर को छोड़ कर और किसी को स्थान नहीं दे सकती ! पर परिस्थिति !! एक बार पतन से अभिनय कर चुकी है, फिर विवश होकर उसी को अपने गले का हार बना ले तो आश्चर्य क्या !

नर्गिस का हृदय विचारों से मथ सा उठा। उसकी आँखों के सामने जीवन का एक दयनीय चित्र खिंच उठा ! वह काँप

उठी उसने आँखों में करुणा का भाव भर कर कहा—तो क्या मेरे ऊपर दया न करोगी? तुम तो कहती थी, करुणा इस समाज की एक विशेष वस्तु है। पर आज वह करुणा कहाँ चली गई? समझ लिया। संसार में सर्वत्र दुखियों का गला घोंटा जाता है—उनका मानवी अस्तित्व लूटा और बर्बाद किया जाता है!''

बुढ़िया की आँखों में जैसे रोष की चिनगारी सी छिटक उठी! करुणा की मूर्ति ईसा भगवान के चित्र के सामने उनके आदर्शों पर चलते हुये समाज पर लांच्छन!! बुढ़िया ने क्रोध के स्वर में उत्तर दिया—नर्गिस! अधिक बढ़ कर बातें न कर मैंने तुम्हारे जीवन को बचाया है, तुम्हें शिक्षा दी है, तुम्हें राक्षस से मनुष्य बनाया है, मुझे अधिकार है, जिस ओर चाहूँ तुम्हारे जीवन को ले जाऊँ! यदि इस तरह तुम न मानोगी तो तुम्हें पुलिस के हाथों सिपुर्द कर तुम्हारे बिगड़े हुये दिमाग़ को दुरुस्त कराऊँगी!!

नर्गिस जैसे भावी दुःखों की स्मृति से काँप सी उठी! बुढ़िया की आँखों में उसने रोष की ऐसी भयंकर ज्वाला कभी न देखी थी! उसका गर्दन विवशता से झुक गया—वह अपनी आन्तरिक प्रतिज्ञा की बाह्य जगत में अधिक देर तक न रक्षा कर सकी। बुढ़िया ने उसके जीवन को, यूसेस के सूत्र में

बाँध दिया नर्गिस और यूसेस के प्रेम सम्मिलन से पुरुस्कार की भाँति जो एक निधि प्राप्त हुई, उसका नाम एलिस था! नर्गिस अपनी गोद में एलिस को देख कर, उसी में ऐसा विभोर हो गई कि उसे अपने अतीत जीवन का ध्यान ही न रहा! परिस्थिति तो है !!

—तेरह—

वह एक छोटा सा क़स्बा है—नाम है माधोसिंह। प्रयाग से बनारस जाने वाली बी-एन-डबल्यू रेलवे के माधोसिंह स्टेशन से एक मील की दूरी पर बसा है। क़स्बे में सभी जाति के मनुष्य रहते हैं—चहल-पहल भी रहती है। पर उस मुहल्ले में जिसमें रधिया का मकान था, सदैव सन्नाटा सा रहता! दिन में न मनुष्यों की भीड़ होती और न रात में दीपकों की जगमगाहट!! टूटी-फूटी झोपड़ियाँ, जैसे अपने भाग्य पर दिन

रात आँसू बहाया करती !! उसमें रहने वाले, चाहे भूख की ज्वाला में जीवन की आहुति दें, चाहे सुख और सन्तोष के साथ रहें, किसी से तात्पर्य क्या ? उनके हृदय का हाल पूँछना तो दूर रहा, उनकी छाया तक से लोग घृणा करते थे ! यदि कोई भूला भटका मनुष्य उस मुहल्ले में निकल जाता तो जैसे उसके जीवन की समस्त मान-मर्यादा सी डूब जाती !! अछूतों का मुहल्ला था न !! उसका इन मनुष्यों की आँखों में अस्तित्त्व ही क्या ?

इसी मुहल्ले की एक झोपड़ी में रधिया का परिवार रहता था। उसके परिवार में था ही कौन ? वह उसका कुमार, और उसका पति ? बूढ़ी सास थी ! वह कई वर्ष पहिले ही मर गई थी ! बेचारी दिन भर मानव समाज की सेवा करती और रात में अपने कुमार को गोदी में लेकर सो जाती ? यही तो उसके उस जीवन की दुनिया थी !!

उस मुहल्ले से सब घृणा करते—उसे नरक का द्वार समझ कर उसकी छाया से दूर भागते !! पर एक प्रौढ़ अवस्था की स्त्री जिसका नाम बासन्ती था, प्रति सोमवार को उस मुहल्ले में आती ! उसके मन में घृणा होती या न होती यह कौन जाने ? पर वह उस मुहल्ले के मनुष्यों से बड़े प्रेम से बातें करती ! आती तो घन्टों उनके पास बैठी रहती ! रधिया से तो उसकी बड़ी मुहब्बत सी थी वह उसकी झोंपड़ी तक में चली जाती—मानों

उसका ही घर हो ! रधिया का कुमार तो जैसे उसकी आँखों में बसा था। वह उसके सलोने रूप को देख कर कहती—रधिया ! तू इस बच्चे की जिन्दगी न चौपट कर ! यह बच्चा सयाना होने पर बड़ा होनहार होगा।

देखो न इसका ललाट !! सोने की भाँति कैसा दमदमा रहा है पर रधिया कुछ उत्तर न देती। विवशता की एक गहरी साँस लेकर चुप हो जाती ! मानों उसके हृदय में एक गहरी वेदना हो—अन्तर के कोने-कोने में कोई भयानक पीड़ा डोल रही हो !! वह अपने कुमार को इस घृणित व्यवसाय से बचाना अवश्य चाहती हो। पर लाचार है।

बासन्ती ! कछवा ईसाई मिशन की प्रचारिका !! उसकी अनुभवी आँखें कैसे चूकतीं !! इसी की तो वह रोटी खाती है—भोले-भाले मनुष्यों को वैभव और सुख का साम्राज्य दिखा कर, उन्हें ईसाई धर्म में दीक्षित कराने का काम करती है। प्रति-दिन दस बीस गाँव का चक्कर लगाती है—सैकड़ों स्त्री-पुरुषों से बातें करती है आँखें मानव प्रकृति का रहस्य जानने में निपुण हो गई हैं न !! फिर रधिया जैसी अज्ञान और अशिक्षित स्त्री !! उसकी प्रकृति का रहस्य ही क्या हो सकता है बासन्ती को यह जानने में अधिक देर न लगी कि चिड़िया जाल में फँसने के लिए, तैयार है।"

—पन्द्रह—

राजा तालाब के सुविस्तृत तालाब के एक कोने में सन्यासी बाबा की कुटी लगी हुई थी। उनका उमड़ा हुआ चेहरा, उनकी उठी हुई जवानी और उनके रूप रंग को देख कर लोग कहते— किसी राजा के बेटे हैं ईश्वर की ओर आँखें लग गई और सन्यास ले लिया !" सन्यासी बाबा की उस कुटी को बने हुये अभी थोड़े ही दिन तो हुये थे—थोड़े ही दिनों से वे वहाँ रहते भी थे। पर अमीर क्या ग़रीब सब में ऐसा हिलमिल गये थे—

मानो कई वर्षों से वहाँ रह रहे हों ! किसी को कोई तकलीफ़ पड़ती, कोई रात के गहरे अन्धकार में भी किसी आन्तरिक पीड़ा से चिल्ला उठता तो झट उसके दरवाज़े पर दौड़े जाते ! अपने हाथों से दवा दारु करते—दिल का दर्द पूँछते और फिर सन्तोष की साँस लेकर अपनी कुटी में वापस चले जाते !! उनकी दवा में भी बड़ा जोर था ! दवा क्या, किसी को यदि अपने हाथ से खाक़ भी उठा कर दे देते तो उसका प्रभाव भी संजीवनी सा ही होता !!

एलिस का स्वास्थ्य जब अधिक ख़राब होगया और किसी वैद्य डाक्टर की औषधि ने उसे लाभ न पहुँचाया तो लाचार होकर उसकी माँ नर्गिस सन्यासी बाबा की सेवा में गई और उनसे एलिस को देखने तथा उसे दवा देने की प्रार्थना की। सन्यासी बाबा ने उसकी प्रार्थना सुन कर कहा—मेरा तो समस्त मानव समाज का कल्याण करना परमधर्म है, पर तुम्हारे यहाँ तो बड़े-बड़े डाक्टर हैं, फिर तुम एक हिन्दू फ़क़ीर की दवा लेकर क्या करोगी ? तुम्हारे सम्प्रदाय के मनुष्य तो हिन्दुओं से घृणा करते हैं, फिर तुम एक हिन्दू सन्यासी की क्यों सहायता चाहती हो ?"

नर्गिस की आँखें वेदना से सजल होगईं ! जैसे आँखों में प्रायश्चित्त की कोई भावना नाच रही हो—जैसे उसका मन किसी पाप की भयंकर ज्वाला से बिदग्ध सा हो रहा हो !! वह

कुछ देर तक सोच कर सन्यासी के चरणों में गिर पड़ी, मानो करुणा की भीख माँग रही हो! सन्यासी ने उसके गिरे हुये मस्तक को जब ऊपर उठाया तो उसने आँखों में दुःख के आँसू भर कर उत्तर दिया :—सन्यासी जी! हिन्दू सन्यासी से मैं प्रेम क्यों न करूँ? क्यों न सहायता की भिक्षा माँगू? आज उस घर से विलग होगई हूँ तो क्या, पर उस संस्कृत से आज भी प्रेम है! हाय मेरी एलिस!! वही तो मेरे पापी जीवन की एकमात्र निधि है! क्या मेरे भयंकर पाप उसे भी अपने गर्भ में सिमेट लेंगे? डाक्टरों और वैद्यों की दवा करते-करते परेशान होगई; अब आपके पास उससे प्राणों की भिक्षा माँगने आई हूँ, मुझ ग़रीबनी पर दया कीजिये!"

सन्यासी की आँखें जैसे सतर्क सी होगईं! उसने अपनी आँखों की जिस सात्विक ज्योति से नर्गिस की ओर देखा, उससे वह काँप सी उठी!! मानों उसके अतीत के पाप उस ज्योति से डर कर भागे जा रहे हों!! सन्यासी ने सहानुभूति के स्वर में कहा—मैं तुम्हारी लड़की को अच्छा कर सकता हूँ! पर यदि तुम उसे मेरी कुटिया में लाकर उसके सामने ही अपने पापों की सारी कहानी मुझे सुना जाओ! इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे जीवन के सम्पूर्ण पाप ही तुम्हारे लड़की के जिगर में काँटे की भाँति चुभ रहे हैं!!

सन्यासी ने यह बात केवल अनुमान से ही कही थी ! जैसे वह अपने इस अनुमान से किसी सत्य घटना का पता लगा रहा हो !! पर नर्गिस के हृदय पर, उसका किसी ईश्वरी दूत के वाक्य का सा प्रभाव पड़ा ! उसने सन्यासी की बातों को पूर्ण सत्य मान कर यह स्वीकार कर लिया मैं एलिस के जीवन के लिये अपने अतीत जीवन की सारी पाप पूर्ण कहानी सुना डालूँगी !

नर्गिस चली गई, सन्यासी मन में सोचने लगा—यदि आज मेरे प्रायश्चित्त की गंगा इसी झोंपड़ी में प्रवाहित होजाय तो फिर भगवान की पवित्र सत्ता को कुछ दुःखी आत्मायें कितना साधुवाद देंगी !!

—सोलह—

चाँदनी की वह रात कितनी मनोरम थी, कितनी सुखद थी !! संसार और प्रकृति दोनों उसमें नहाँ कर जैसे अपने पापों को धो से रहे हों ! नर्गिस एलिस को लेकर सन्यासी बाबा की कुटी पर पहुँची। वह चारपाई पर सुला दी गई ! नर्गिस के साथ उसका पति यूसेस और कुमार की माँ रधिया तथा उसके पति भी थे। ये दोनों भी एलिस के बीमारी का हाल सुन

कर कछुवा से चले आये थे। कुमार का एलिस की ओर गहरा झुकाव देख कर रधिया को यह विश्वास होगया था, कि वही उसकी बहू होगी ! फिर वह अपने कुमार की भावी पत्नी एलिस को क्यों न देखने आती !! उसके हृदय में भी तो एलिस के प्रति एक ममता सी जम गई थी !!

निस्तब्ध संसार, प्रकृति का मौन राज्य ! चाँद की मनोरम पिचकारी छूट कर सारे संसार को तर कर रही थी ! सन्यासी ने नर्गिस से कहा—अच्छा सुनाओ, अपनी कहानी ! मैं तुम्हारी एलिस के स्वास्थ्य के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर रहा हूँ ! नर्गिस कहने लगी। सब लोग सुनने लगे। एलिस भी अपनी बीमारी भूल सी गई। आँखों में उत्सुकता की कामना भर कर नर्गिस की ओर देखने लगी ! नर्गिस ने कहा :—

यहाँ से बीस पच्चीस मील की दूरी पर विनोदपुर नामक एक गाँव है, मेरा वहीं घर था—मैं वहीं ब्याही गई थी। मेरे घर में मैं और मेरे पति को छोड़ कर और कोई न था ! मैं दैव की मारी—अभागिनी छः महीने से अधिक सुहाग का सुख न भोग सकी—मेरे पति की मृत्यु होगई। मैं अनाथिनी बन गई !! चक्की चला कर मजदूरी करती और उसी से अपना पेट पालती थी। न संसार से तात्पर्य न किसी की चिन्ता !! मुझे अपनी उसी दुनिया में संतोष था—सुख था पर

मेरे संतोष की वह दुनियाँ भी अधिक दिनों तक न स्थिर रह सकी ! गाँव के जमींदार प्रेमकुमार की मेरे अभागे रूप पर दृष्टि पड़ी ! मेरी इच्छा न रहने पर भी उन्होंने अपनी राक्षसी शक्तियों के सहारे मुझे अपने चंगुल में फाँस लिया। हाय मेरा वह पतन कितना भयानक था ! उसकी स्मृति आज भी मेरे अन्तर के पहलू-पहलू को कँपा देती है !!

मेरे उस पतन का भयानक परिणाम !! मैं गर्भवती होगई। धीरे-धीरे गाँव में मेरी निन्दा होने लगी। जिसी को देखिये, वही मुझे पापिनी कह कर मेरी ओर घृणा से उँगली उठाता !! प्रेमकुमार ने भी विश्वास घात का गहरा जहर उगल कर उन मनुष्यों का साथ दिया। यही नहीं, जब वे गाँव वालों की ओर से मेरे भाग्य का निर्णय करने के लिये विचाराधिपति चुने गये तो राक्षस की भाँति विवेक शून्य होकर मुझे बेतों से मार कर गाँव की सीमा के बाहर खदेड़ दिया ! मैं वहाँ से चल कर एक गाँव में पहुँची और वृक्ष के नीचे, टूटा फूटा आश्रय बना कर रहने लगीं ! ओह ! मेरा वह जीवन !! कोई मुझे पगली कह कर पुकारता कोई अभागनी !! पर मैं किसी की एक बात का भी उत्तर न देती ! भला या बुरा सब कुछ सुन लेती और चुप चाप पड़ी रहती !!

ओह वह संध्या कितनी भयानक थी—कितनी वेदना मयी !!

मैं पीड़ा से काँप उठी और मान-मर्यादाओं के भय से अपने आश्रय स्थल को छोड़ कर रात के गहरे अंधकार में पूर्व की ओर भाग चली! कुछ ही दूर चल पाई थी कि पीड़ा ने मुझे बेचैन कर दिया!! मैं एक वृक्ष के नीचे धीरे से बैठ गई! हाय! उसी अन्धकार में उसी वृक्ष के नीचे मेरे पाप का पुतला!! सचमुच मैं पगली थी, अभागिनी थी!! मेरी विचार शक्तियाँ न जाने किस अनन्त लोक में विलीन हो गई थीं! जैसे पगली निर्ममता शून्य होकर अपने जीवन की अमूल्य निधि को भी सागर में फेंक देने में संकोच नहीं करती, उसी प्रकार मैंने भी कलेजे पर पत्थर की सिल रख कर अपने कलेजे को एक नाले में सुला दिया। वह रो रहा था, सारी मौन-प्रकृति उसकी अबोध किलकारियों से गूँज रही थीं, पर मुझे दया न आई! उसे सुला कर खून में सनी हुई इस प्रकार वहाँ से भगी, मानों वह कोई हिंसक जन्तु हो और मैं उसे विवशता की परिस्थिति में डाल कर प्राणों की ममता से भागी जा रही हो!! शरीर में शक्ति नहीं थी पर मुझे याद है, मैंने अपनी आँधी की सी प्रगति से बहुत दूर का मार्ग तै कर दिया! और फिर वहाँ पहुँच कर एक शीशम के वृक्ष के तले ठोकर खाकर गिर पड़ी और चेतना शून्य हो गई! उसके बाद मेरा जीवन अब आपके सामने है।

एक दिन जब बासन्ती, रधिया की झोपड़ी में गई तो उसके अंचल का कोना पकड़ कर कुमार रो रहा था—रधिया की आँखों में भी आँसू थे। बासन्ती ने उन दोनों में होती हुई बात का कुछ अंश भी सुनाया नहीं, यह कौन जाने पर उसके समझने में यह देर न लगी, कि माँ-बेटे दोनों इस समय किसी गम्भीर वेदना से दुःखी हो रहे हैं! बासन्ती ने शीघ्र आँखों से कृत्रिम करुणा का भाव दौड़ा कर कहा—रधिया! आज तू उदास क्यों है? आज तुम्हारे मुख पर वह ज्योति तो नहीं दिखाई देती, जिससे तुम्हारी आकृति विहँसती से रहती थी! और यह कुमार भी तो आँसू बहा रहा है, कहो बात क्या है?

रधिय की आँखों में जैसे वेदना का समुन्दर सा उमड़ पड़ा! आँसू की बूँदे, छलक कर दोनों कपोलों पर बह कर भूमि पर ढुलक पड़ी!! विवशता की एक गहरी साँस लेकर उसने उत्तर दिया—क्या बताऊँ? भगवान ने दुनिया में इस जाति की सृष्टि कर बड़ा पाप किया—अपनी पवित्र सत्ता पर एक कलंक लगा लिया!! लोग छूने तक से पाप करते हैं!! भोले-भाले बच्चे, यदि भूल कर किसी के द्वार पर चले जाते हैं तो कुत्ते की भाँति दुतकार दिये जाते हैं!! देखो न यह फूल सा कोमल कुमार!! न जाने कहाँ से अपमान की गहरी ठेस

खा कर आया है, कहता है माँ मुझे भी मनुष्य बनाओ !! ओह कितना अज्ञान है, कितना भोला है !!

वासन्ती को जैसे अपने स्वार्थ-साधन का सहारा सा मिल गया ! उसने आँखों में सहानुभूति की भावना भर कर कहा—हाँ, यह समाज ही ऐसा है रधिया !! इस समाज में जब लोग अपनी स्त्री और बच्चे तक से प्रेम नहीं करते, तब दूसरों से क्यों प्रेम करने लगे—क्यों उसे सहानुभूति और करुणा की दृष्टि से देखने लगे ? तुम्हारी इस दयनीय परिस्थिति पर मुझे दया आती है रधिया !! समाज की कठोरता के कारण तुम्हारा फूल सा सुकुमार बच्चा मसला उठेगा—उसके जीवन में छिपी हुई निधियाँ, अस्तित्व-हीन होकर मिट्टी में मिल जायगी। इस लिये यदि तू मेरी एक बात मान लें, तो बहुत सुन्दर हो—तुम्हारे हृदय की सारी उलझन मिट जायगी !!

रधिया का मन जैसे आशा से जाग उठा। उसने उत्तर के रूप में पूछा :—कहो कौन सी बात ?

तुम अपने बच्चे को मेरे मिशन में दाखिल करा दो वासन्ती ने उत्तर दिया—या स्वयं भी परिवार सहित दाखिल हो जाओ। वहाँ तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा ! कोई तुमसे घृणा न करेगा। तुम्हारे कुमार की तो किस्मत ही खुल जायगी !

बड़े बड़े आदमियों के लड़कों के साथ पढ़ेगा—पढ़ लिख लेगा तो नौकरी दिला दी जायगी !

रधिया को जैसे बासन्ती की बातें बहुत प्यारी लगीं ! प्यारी क्यों न लगती ? वह तो यही चाहती थी न !! क्या करे, आखिर मनुष्य ही तो है ! कब तक अत्याचार सहे, कब तक अपनी आन्तरिक इच्छाओं को विवशता के आँचल तले ढँकी रहती !! बेचारी जब दूसरों के छोटे छोटे बालकों को हँसते, किलकते हुए स्कूल जाते देखती तो उसके मन में भी कुमार के पढ़ाने की अभिलाषा जागृत हुआ करती थी ! पर करे क्या ? विवशता ने उसके हाथ-पाँव बाँध दिये थे न !! किस स्कूल में उसे पढ़ने के लिये भेजती, कोई बैठने भी तो न देता ? इसी अपनी दयनीय परिस्थिति से ऊब कर तो उसने बासन्ती की बातों का उत्तर दिया—मैं तैयार हूँ बहन !! अपने परिवार सहित तुम्हारे मिशन में चली चलूँगी ! यहाँ मेरा रक्खा ही क्या है ? ”

समय ठीक होगया । बासन्ती निश्चित दिन वहाँ जा पहुँची ! जैसे उस दिन की बड़ी उत्सुकता से परीक्षा करती रही हो । वह अपने साथ रधिया कुमार और रधिया के पति को कछवा मिशन में ले गई । वहाँ सब के सब ईसाई धर्म में दीक्षित कर लिये गये । मानों कुछ भेद भाव का रहस्य ही नहीं

यह सम्बाद जब अपने वास्तविक रूप में लोगों के कानों में पड़ा तो कुछ सुधारको ने „दौड़ धूप की ! समाचार पत्रों ने बड़े-बड़े शीर्षकों में इस समाचार को प्रकाशित कर हिन्दू-समाज की घृणित मनोंवृत्ति पर टीका टिप्पणी की। सुधारकों ने मजिस्ट्रेट के पास दरख्वास्त देकर प्रार्थना की—कुमार रधिया का लड़का नहीं है। वह उसे किसी नाले में पड़ा हुआ मिला था। इसलिये उसका उस बच्चे पर कुछ अधिकार नहीं ! "पर मजिस्ट्रेट ने सुधारकों की बात पर कुछ ध्यान न दिया। कुमार मिशन में रह कर ही शिक्षा पाने लगा ! कुछ दिनों में जब वह ग्राम्य पाठशालाओं की शिक्षा समाप्त कर चुका तो, मिशन के व्यय से पढ़ने के लिये इलाहाबाद भेद दिया गया !!

रधिया अपने कुमार को शिक्षा के मैदान में इस प्रकार अग्रसर होते हुये देख कर जैसे फूली न समाती !! क्यों न ? यही तो उसकी आन्तरिक कामना थी न !!

—चौदह—

दस वर्ष बाद !

प्रयाग के उस चर्च में जिस समय भगवान की आराधना में झुके हुए मस्तक ऊपर उठे, युवक की निगाहें युवती की रसवती आँखों में जा गड़ी ! वह भी मानो उसकी ओर देख रही हो— आराधना मन्दिर में उसकी मादकता का रस पान कर रही हो ! दोनों आराधना को विस्मृत से होगये !! आराधना में लगे हुये जन समूह में दोनों की आँखें सुन्दर अवसर का सुयोग सी ढूँढने

लगी—तनिक भी अवसर मिलता और दोनों की आँखें फिर एक दूसरे से मिल जातीं ! मानों दोनों कि आँखों में एक प्यास छिपी हो और दोनों उसी को मिटाने के लिये प्रयास कर रहे हों !! पर कब तक ? आराधना, समाप्त हुई और दोनों फिर मन में एक गहरी वेदना लेकर एक दूसरे से अलग हो गये ! मानों वह आराधना, मन्दिर ही उन दोनों के लिये प्रेम-मन्दिर बना हो—दोनों की रसभरी आँखें वहीं एक दूसरे से बात कर पातीं !!

पर प्रेम ! आँखों का उन्माद तो है !! अपरचित को भी लाकर सन्निकट बैठाल देता है—सुदूर वासी को भी मधुर सम्भाषण का सुयोग देता है ! फिर वे दोनों तो एक ही शहर में एक दूसरे से थोड़ी दूर बसते थे ! कालेज में पढ़ते थे । प्रकृति के स्वतन्त्र थे । कोई नियन्त्रण था ही नहीं, अपनी इच्छानुसार—चाहे जहाँ आ जा सकते थे ! फिर एक दूसरे से कब तक अपरिचित रहते आखिर एक दिन परस्पर की बात चीत में दोनों ने यह जान ही लिया कि दोनों अधिक दूर के नहीं, आस पास ही के रहने वाले हैं ! कछवा और राजा तालाब में अन्तर ही कितना है ! केवल दस-पन्द्रह मील का ! दोनों को अपने इस निकटतम परिचय से, यदि अधिक प्रसन्नता हुई तो आश्चर्य क्या ?

एक का नाम एलिस था और दूसरे का कुमार! एक थी ईसाई युवती और दूसरा था ईसाई युवक! दोनों अपने जीवन के किसी संस्कार से प्रेम के तार में बँध गये! दोनों की आत्मा एक दूसरे के अभाव में महान् दुःख का अनुभव करतीं! दोनों ने स्वतन्त्र रूप से अपनी माता और पिता पर भी यह व्यक्त कर दिया कि दोनों कि जुटी हुई आत्मा को दुनियाँ की कोई शक्ति विलग नहीं कर सकती विलग करने की आवश्यकता ही क्या थी? दोनों एक दूसरे के योग्य थे! दोनों में रूप था, यौवन था, विद्या थी, स्वास्थ्य था, और क्या चाहिये? संसार तो ऐसी सुन्दर जोड़ियों का दोनों हाथों से स्वागत करता है!!

जाड़े का महीना था। बड़े दिन की लम्बी छुट्टी समाप्त हो गई थी। लड़के नियमित रूप से अपने अपने काम में लग चुके थे। पर कुमार प्रायः उदास रहा करता। उसके मन में जैसे एक वेदना नाचा सी करती! वह सोचता—एलिस अब तक क्यों नहीं आई? वह तो अपने कालेज के कामों में इस भाँति कभी न असावधानी करती! क्या कहीं बीमार तो नहीं हो गई! ओह! रूप की वह किरण ही तो मेरे जीवन की निधि है!"

कुमार इसी चिन्ता में प्रायः निमग्न सा रहा करता! एक दिन उसकी चिन्ता अधिक बढ़ गई, जब उसे सचमुच एलिस के बीमारी का तार मिला। वह विक्षिप्त सा हो गया। सारी विचार

शक्तियाँ अन्धकार में विलीन हो गईं ! क्या करें, क्या न करें ? बिमारी तो बहुत भयंकर बताई गई है ! फिर क्या, वह एलिस की बीमारी का हाल सुन कर के भी निश्चिन्त मन से कालेज में शिक्षा प्राप्त कर सकता है ! नहीं वही तो उसके जीवन की निधि है !! वह उसी दिन कालेज से छुट्टी लेकर एलिस के पास जा पहुँचा ! एलिस ने कुमार को अपने सामने देख कर सन्तोष के जिस महान् सुख का अनुभव किया, वह बताने की चीज़ नहीं !!

नर्गिस की बात अच्छी तरह पूरी भी न होने पाई थी ! कि रधिया आँखों में आश्चर्य का भाव भर कर चिल्ला उठी—तो क्या यह कुमार तुम्हारा ही बच्चा है ! तुमने ही इसे एक फटे हुए क़फ़न से ढाँक कर नाले में सुला दिया था !

सब के सब सन्न थे ! आँखों में आश्चर्य की कामना नाच रही थी ! संन्यासी ने शिर ऊपर उठा कर रधिया से कहा—कुमार को तुमने कैसे पाया ? अपनी कहानी सुना डालो न।

रधिया कहने लगी—मैं उस समय जाति की भंगिन थी। भंगिन को चाहिये ही क्या ? रहने को एक झोपड़ी और खाने को दो एक सूखी रोटियाँ ! बस यही तो उनका धन है !! मेरे पास भी अपना यह छोटा सा धन था। पर मेरा हृदय एक भयंकर चिन्ता से दुःखी रहा करता था। मेरे कोई संतान न थी। मैंने इस चिन्ता से मुक्त होने के लिये शंकर की पूजा का संकल्प किया ! पर मुझ अभागिनी को कोई सत्ताधारी हिन्दू अपने मंदिर में क्यों जाने देने लगा ? मैं उस ओर से निराश होकर पीर बाबा की पूजा करने लगी। उनका चबूतरा अब भी उस नाले के पास बना हुआ है ! मैं प्रति सोमवार को पीर बाबा की पूजा करने के लिये उस स्थान पर जाती। और उनके चबूतरे पर शिर रख कर घन्टों उनकी सिजदा किया

करती थी। उस दिन भी पूजा करने गई थी—चबूतरे पर शिर रख कर सिजदा कर रही थी! सहसा मेरे कानों में नव जात बच्चे के रोने की आवाज़ गूँज उठी! मैंने शिर उठा कर देखा कोई नहीं! और फिर उसी ओर दौड़ चली! नाले के कगार पर पहुंच कर देखा, फटे कपड़े में लपेटा हुआ मेरा यह कुमार!! मैंने उसे छाती से लगा लिया। पीर बाबा ने कृपा करके मेरे स्तनों में दूध की धारा भी बहा दी। मैं उसका पालन करने लगी। जब वह बड़ा हुआ तो उसकी शिक्षा के मोह से ईसाई बन गई।

रधिया की बात सुन कर कुमार ने कहा—तो क्या एलिस मेरी बहन है?

सन्यासी ने अपनी आँखों के आँसू पोंछ कर उत्तर दिया, हाँ कुमार—एलिस तुम्हारी बहिन है। और मैं तुम्हारा भाई। जिस दिन तुम्हारी माँ रूपा के पतन का समाचार—मेरे कानों में पड़ा, उसी दिन से मैंने संन्यास का यह बाना भी ले लिया है! मेरी प्रतिज्ञा थी मैं अपने पिता प्रेमकुमार के पापों का प्रायश्चित करूँगा—ठुकराई हुई रूपा का रूपा लगा कर—उसे सुन्दर आश्रय दूँगा। आज इतने दिनों के बाद—मेरी वह प्रतिज्ञा पूरी हुई। जिस सत्ता धारी भगवान ने तुम लोगों को एक दूसरे के साथ मिलाया है। वही एलिस को जीवन दान भी

देगा। पर अब इसी चाँदनी रात में हम लोगों को प्रायश्चित करना चाहिये, पुण्य की पवित्र धारा में बहा कर शुभ बनाना चाहिये। हिन्दू-समाज में पुनः दीक्षित होकर उसकी समस्त बुराइयों को दूर करना चाहिये। बोलो तुम लोग तैयार हो या नहीं।

पाठक ! गिरजा को न भूले होंगे। उसने ही तो रूपा की खोज के लिये सन्यासी का बाना धारण किया था। उसकी मुख से यह बात निकलते ही भगवान कृष्ण की जय जय कार से झोपड़ी गूँज उठी। गिरजा ने सबका नवीन नाम धारण किया ! एलिस का नाम शारदा, नर्गिस का नाम रूपा, और यूसेस का नाम आत्माराम पड़ा। कुमार, रधिया और उसके पति का नाम परिवर्त्तित नहीं हुआ था, इस लिये वह ज्यों का त्यों रहा। सबने एक स्वर से प्रतिज्ञा की हिन्दू-समाज से अछूतपन की कालिमा को दूर करने के लिये आजन्म ब्रह्मचारी रहेंगे, दुर्दशा ग्रस्त विधवाओं के उद्धार के लिये अपने शरीर की समूची शक्तियों का भी आवश्वकता पड़ने पर हवन कर देंगे।' प्रेमकुमार और उसकी स्त्री प्रतिमा को जब यह हाल मिला। तब उन दोनों ने भी प्रायश्चित की इस पवित्र गंगा में स्नान करके इस महाव्रत के प्रत्येक अक्षर को बड़े प्रेम से दुहराया !

फिर व फिर तो युवक गिरजा ने अपनी शक्ति और साहस से अत्याचारी समाज के लिए एक ऐसी चिता बना कर तैयार की जिस पर सोकर वह सदा के लिये खाक में मिल गया हो तो आश्चर्य क्या ?

॥ समाप्त ॥